UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182052

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No 481.092 Accession No. 429

Author V12 K

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

# कबीर और जायसी का मूल्यांकन

पुरुषोत्तम चन्द्र
वाजपेयी एम० ए०

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी।

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो० बक्स नं० ७०
ज्ञानवापी, वाराणसी-१

मुद्रक : ज्योतिष प्रकाश प्रेस, वाराणसी ।

आवरण-मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०, मानमन्दिर, वाराणसी ।

आवरण : काजिलाल

संस्करण : प्रथम—११००
अक्तूबर, १९५७

मूल्य : दो रुपये पचीस नये पैसे

* * * * *

आचार्य डॉ० मुंशीराम जी शर्मा एम० ए०, डी० लिट्

अध्यक्ष

हिन्दी-विभाग : डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर

को

सादर समर्पित

* * * * *

# भूमिका

श्री पुरुषोत्तमचन्द्र वाजपेयी द्वारा लिखित 'कबीर और जायसी का मूल्यांकन' शीर्षक ग्रन्थ का आदि से अन्त तक पारायण करने का अवसर मिला, लेखक ने अत्यन्त सहृदयता के साथ कबीर और जायसी के जीवनवृत्त, उनकी काव्य-शक्ति, उनकी भाषा, उनका सत्तस्वरूप, उनके दार्शनिक सिद्धान्त, सामाजिक पक्ष, उपदेश रहस्यानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति, उनकी रचना सब पर अलग-अलग विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार किया है। यह ग्रन्थ ऐसे ढंग से लिखा गया है कि यदि कोई चाहे तो इसके अलग-अलग दो खंड कबीर और जायसी बना कर अलग-अलग भी अध्ययन कर सकता है।

लेखक ने जहाँ साहित्यिक दृष्टि से और दार्शनिक दृष्टि से दोनों रचयिताओं का सूक्ष्म अध्ययन किया है, वहाँ उसने अत्यन्त निष्पक्षता के साथ दोनों की खरी आलोचना करने में भी किसी प्रकार की कृपणता नहीं की। जीवन के जिन अनेक पक्षों में कवि अपनी अन्तर्भेदनी दृष्टि डालकर उसका तत्त्व ग्रहण करके उसका परिचय देने का प्रयत्न करता है, उन सबकी ओर से लेखक सजग है और उसने उन सभी धार्मिक पक्षों का अनुबन्ध पूर्वक विश्लेषण किया है, जिनसे कवि की विभिन्न भाव-धाराएँ व्यक्त हो सकी हैं।

कबीर और जायसी पर इधर बहुत कुछ लिखा गया है। यद्यपि मूलतः जायसी कवि थे और कबीर कवि नहीं थे, फिर भी काव्य की दृष्टि से कबीर को उतना ही महत्त्व दिया जा रहा है जितना दार्शनिक कबीर को पहले दिया जाता था। यही बात जायसी के सम्बन्ध में भी है। जायसी कवि भी थे और दार्शनिक भी। किन्तु रूपक काव्य लिखने के कारण वे उसी प्रकार के कवि थे जैसे कोई दार्शनिक अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये किसी कथानक का आश्रय ले। किन्तु जायसी कोरे दार्शनिक ही नहीं, कवि भी थे। लेखक ने अत्यन्त सत्य निष्ठा के साथ कबीर और जायसी दोनों के उभय पक्ष अत्यन्त विषदता के साथ प्रस्तुत करने में कोई संकोच नहीं किया।

अभी तक कबीर और जायसी पर कोई तुलनात्मक ग्रन्थ मेरी दृष्टि में नहीं आया। इस विचार से यद्यपि यह ग्रन्थ इस विषय पर पहला है किन्तु इतना सांवयव है कि कबीर और जायसी का अध्ययन करने वाले लोग इस ग्रन्थ से अपरिमित लाभ उठा सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी साहित्य इस ग्रन्थ का उचित समादर करेगा। हम हृदय से विद्वान लेखक की इस कृति का अभिनन्दन करते हैं और विश्वास करते है कि उसकी लेखनी अधिक सशक्त होकर और भी अधिक सशक्त रचनायें प्रस्तुत करेगी।

—सीताराम चतुर्वेदी

लोलार्क षष्ठी, सं० २०१३

———

# आत्म-निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक में कबीर और जायसी पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते समय अब तक की समस्त उपादेय सामग्री का उपयोग कर उसका सार-तत्त्व मोटे रूप में रखने की चेष्टा की गई है। लिखते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि माध्यमिक एवं उत्तरमाध्यमिक वर्ग के विद्यार्थी इससे लाभान्वित हो सकें। आदरणीय प्रोफेसर पं० सिद्धनाथजी मिश्र एम० ए० एवं प्रोफेसर सुधाकर पाण्डेय ने प्रेरणा एवं परामर्श देकर तथा भाई राजेन्द्र सिंह एम० ए० ने पुस्तक हेतु आवश्यकीय पाठ्य सामग्री जुटाकर मेरे प्रति जो उदारता दिखाई है उसके लिये उनका मैं हार्दिक आभारी हूँ।

आचार्यप्रवर पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने पाण्डुलिपि पढ़कर जिन उत्साहपूर्ण शब्दों में मंगलाशा व्यक्त की है वह मेरे जीवन की स्मरणीय धरोहर है।

यदि मेरी इस रचना से कबीर और जायसी को समझने में किंचित मात्र भी अध्येताओं को सहायता मिली तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

**काशी**
दीपावली, सं० २०१३ वि०

विनयावनत्
पुरुषोत्तमचन्द्र दाजपेयी

# विषय-सूची


| विषय | | पृ०सं० |
|---|---|---|
| **कबीर** | | |
| १. पूर्वापर परिस्थिति | ... | ६ |
| २. जीवन-वृत | ... | १५ |
| ३. कबीर : कवि के रूप में | ... | २० |
| ४. कबीर : समाज-सुधारक के रूप में • | ... | २५ |
| ५. सिद्धान्त और मार्ग | ... | ३० |
| ६. कबीर की रहस्यानुभूति ० | ... | ३५ |
| ७. कबीर की साखी | ... | ४० |
| ८. कबीर के पद | ... | ४४ |
| ९. कबीरकी परम्पराको अपनानेवाले अन्य कवि | ... | ४८ |
| **जायसी** | | |
| १. प्रेम-गाथा की परम्परा | ... | ५५ |
| २. जीवन-वृत | ... | ६० |
| ३. पद्मावत का कथानक | ... | ६५ |
| ४. जायसी का काव्य | ... | ७१ |
| ५. मत और सिद्धान्त | ... | ७६ |
| ६. सूफी और संत कवि | ... | ८० |
| ७. जायसी का रहस्यवाद ० | ... | ८५ |
| ८. प्रबन्ध काव्य के रूप में पद्मावत | ... | ८९ |
| ९. पद्मावंत की प्रेम-पद्धति | ... | ९३ |
| १०. उपसंहार | ... | १०० |


——:०:——

# कबीर

# पूर्वापर परिस्थिति

कबीर के पूर्ववर्ती अनेक भारतीय मनीषियों द्वारा संत काव्य का सृजन किया गया था। परन्तु उनका क्रम-विधि से विवरण प्रस्तुत करते समय लेखकों को उनके काल के सम्बन्ध में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं। संत काव्य का आरम्भ कब से हुआ यह अनिश्चित सा ही है? कुछेक विचारकों का ऐसा मत है, कि संत काव्य का आरम्भ संस्कृत साहित्य के साथ ही साथ हुआ है।

**सत्य व्रतं सत्य परं त्रि सत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।**
**सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्र सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥**

**। श्रीमद्भागवत।**

से भी आभास मिलता है कि संत साहित्य का अभ्युदय आचार विचार के धनी महापुरुषों के आविर्भाव के साथ ही साथ हुआ होगा।

मानव हृदय अपने मूल रूप में न बुरा है और न अच्छा। हृदय और मन पर पड़े संस्कार उसे अच्छा और बुरा बनाने के उत्तरदायी रहा करते हैं। शेक्सपियर की यह उक्ति **There is nothing good or bad but thinking makes it so.** भी इस विचार का समर्थन करती है। मनुष्य का हृदय साधारणतया जिज्ञासु और संवेदन शील रूप में ही प्रतिलक्षित होता है। जीवन के विविध अंगों के निरीक्षणोपरांत उसने अनन्त सत्ता को समझने के लिये दो मार्ग काव्य और धर्म अथवा सौंदर्य और सत्य निर्धारित किये।

संत और कवि का कर्म एक सा ही हुआ करता है। संत तत्वान्वेषी और कवि सौंदर्यान्वेषी होते हैं। सौंदर्य और सत्य के सामजंस्य से ही जन-कल्याणकारी भावना का प्रस्फुटन हुआ करता है। संत और कवि दोनों ही के कर्म महान् हैं। वे हमें भावना सोपानों के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाते हैं। किसी भी वस्तु के साक्षात्कार के पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति जब संत और कवि के द्वारा हुआ करती हैं तब हम प्रेम और साहित्य की धारा को विकसित हुआ पाते हैं। अपने विचार तंतुओं को इतिहास के क्रमिक

---

**अच्छी और बुरी नाम की मूलतः कोई भी वस्तु नहीं है। प्रवृत्तियों के आधार पर इनका निर्माण हुआ करता है।**

विकास पर ( वैदिक युग से लेकर आज तक ) फैलाने के पश्चात बुद्धि जो कुछ ग्रहण करने में समर्थ होती है, उस आधार पर यह कहना कि जिस युग में सन्तों की अनुभूति और अभिव्यक्ति जितनी गहराई के साथ प्रतिलक्षित हुई है, उस युग का साहित्य उतना ही सजीव और स्फूर्तिदायक बन पड़ा है, वस्तुस्थिति से परे न होगा।

कालान्तर से भारतवासियों ने एक केंद्रीयभूत सत्ता के स्थान पर उसके विभिन्न रूप रंगों की कल्पना कर अनेक देवी देवताओं की अर्चना करना प्रारम्भ कर दिया। जिन संतों ने तत्व रूप में जो कुछ भी ग्रहण किया वे उसे ही प्रतिप्रादित कर अपने मतावलंबियों के लिये उपदेशात्मक रूप में उसकी अभिव्यक्ति की। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की व्यवस्था कर इनके प्रतिपादकों ने यह अनुभव किया कि विचारधारा को सार्वजनिक और सार्वग्राही बनाने के लिये वैखरी वाणी का आश्रय अत्यंत आवश्यक है। यही कारण है कि इतिहास पुराणों में व्यास, नारद और याज्ञवल्क्य आदि मुनियों ने ईश्वरीय तत्व को कविता के माध्यम से जनता जनार्दन तक पहुँचाने का प्रयास किया। हिन्दी साहित्य में संत-काव्य की परम्परा में हमें सबसे पहले जयदेव के पद्य मिलते हैं। परन्तु जयदेव से संत-काव्य का अभ्युदय मानना अनुपयुक्त है, क्योंकि उनका काव्य भी अधिकांशतः संस्कृत साहित्य के अंतर्गत ही आता है। ग्रंथ साहब में नामदेव जी का उल्लेख मिलता है। ये सतारा प्रांत के नरसी ब्राह्मणी नामक ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म सम्वत् १३२७ में कार्त्तिक शुक्ला ११ रविवार को सूर्योदय के समय हुआ था। इनकी परम्परा से दरजी की वृत्ति थी। और परम्परा से ही ये विट्ठल भक्त थे। आचार्य सुधाकर जी इनका जन्म काल सम्वत् १३२४ मानते हैं। आचार्य शुक्ल जो इन्हीं नामदेव को संत काव्य का संस्थापक मानत हैं॥ शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि इनकी रचनाओं में एक विशेष बात यह पाई जाती है कि कुछ पद्य तो सगुणोपासना और कुछ निर्गुणोपासना से संबंधित हैं। ये कुछ सीधे साधे मार्ग की ओर जा रहे थे पर संत ज्ञानदेव के प्रभाव से प्रभावित हो अंतर्मुखी साधना के द्वारा निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार की चर्चा कर बैठे।

'हिन्दू पूजे देहरा मुसलमान मासीद।
नाभा सोई सेवया जहं देहरा न मसीद॥'

प्रस्तर पूजा के सम्बन्ध में भी नामदेव कबीर के प्रथ-प्रदर्शक हैं, उनका विचार है:—

'एकै पाथर विजय भाव
दूसर पाथर करिये भाव'

कुछ लोगों का मत है कि कबीर और नामदेव[1] समकालीन थे। परन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने इस तथ्य का खंडन करते हुये कहा है कि भाषा की पुष्टि के आधार पर नामदेव के युग का निर्णय करना उसी प्रकार होगा जिस प्रकार अमीर खुसरो को भाषा की समता के कारण १९वीं सदी की खड़ी बोली में रखने की चेष्टा करना है।

कबीर पंथ के विद्वानों के मतानुसार कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है। श्री लक्ष्मण नारायण जी गर्दे की राय में नामदेव जी ने संवत् १४०७ वि० में अस्सी वर्ष की अवस्था में पण्ढरपुर में श्री विट्ठल मन्दिर के महाद्वार की सीढ़ी पर शरीर छोड़ा था। उपर्युक्त दोनों मतों के सामंजस्य से कबीर नामदेव के समकालीन नहीं थे, यही स्वीकार करना पड़ेगा।

नामदेव के बाद त्रिलोचन का नाम आता है। यह नामदेव के समकालीन थे और पण्ढरपुर के निवासी थे। ( An outline of the religious literature of India ) के लेखक जे० एन० फर्कुहर ने पृष्ठ संख्या २९० और ३०० के बीच इनकी चर्चा की है। "Another Maratha singer Trilochan by name seems to have been contemporary of Namdeo but very little is known about him."[1]

डा० रामकुमार वर्मा त्रिलोचन को भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञानी होने के कारण त्रिलोचन मानते हैं।

ग्रंथ साहब में इनके हिन्दी भाषा में लिखे हुये तीन पद मिलते हैं जिनमें निर्गुण ज्ञानाश्रयी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इनके अतिरिक्त कबीर के पूर्व नामदेव के समकालीन 'सदन' और 'बेनी' की चर्चा भी मिलती है, जिनकी रचनाओं में भाषा की प्राचीनता तथा हठयोग के आध्यात्मिक साधन की प्रणाली के दर्शन होते हैं। ये दोनों संत उत्तरी भारत में हुये हैं, परन्तु नामदेव और त्रिलोचन का उदय दक्षिण में होने के कारण संत मत का प्रादुर्भाव महाराष्ट्र प्रांत से ही हुआ है, यही सर्वस्वीकृत तथ्य है।

कबीर के पूर्व होने वाले संतों में रामानन्द जी का प्रमुख स्थान है। इनका समय सम्वत् १३५३ माना जाता है, जिसकी पुष्टि भाषा विज्ञान के

---

१. एक दूसरे मराठा गीतकार त्रिलोचन हैं, जो नामदेव के समकालीन ज्ञात होते हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है।

विशिष्ट विद्वान डा० भण्डारकर जी ने अपनी पुस्तक ( Vaishnavism Shaivaism and other minor religions of India ) में की है। रामानन्द जी के दो पद ग्रन्थ साहब में भी मिलते हैं। एक तो निर्गुण मत तथा दूसरा हनुमान जी की स्तुति से सम्बन्धित है।

रामानन्द जी की प्रमुख विशेषता विभिन्न सम्प्रदाय और जातियों को सम्मिलित करने में है। "Among his personal desciples we find not only Sudra, Jat and outcaste but Mohammedans and woman too, whose name was Padmavati."[1]

रामानंद के प्रसिद्ध बारह अनुयायियों में से धन्ना, पीपा, रैदास, और कबीर का विशेष स्थान है। धन्ना जाट थे और स्वामी रामानंद जी द्वारा काशी में दीक्षित हुये थे। इन्हें अध्ययन और शास्त्र श्रवण का सौभाग्य नहीं मिला था। बाल्यकाल से ही हृदय में भगवत्-भक्ति का बीज अंकुरित हो उठा था। संत समागम से प्रारम्भ में मूर्ति पूजक होते हुये भी स्वामी रामानंद के सम्पर्क में आने के बाद इनके विचार एकेश्वरवादी तथा निर्गुण ब्रह्म के पोषक हो गये थे।

राजकुमार पीपा का लालन पालन अरावली पर्वत की श्रेणियों से घिरे हुये गांगरौन नामक गढ़ में हुआ था। बचपन से ही धार्मिक भावना को प्रश्रय देने वाले संत पीपा जी राजसिंहासन पर बैठने के पश्चात् भी संयम् नियम से धर्मरत रहे।

प्रारम्भ में स्वामी रामानंद जी ने इनको राजा होने के कारण दीक्षित करने में असमर्थता प्रकट की, परन्तु इनकी लगन और जिज्ञासु भावना के कारण इन्हें अपना शिष्य बना लिया। ये उच्चकोटि के ईश्वर भक्त थे। इनकी १२ रानियों में एक रानी सीतादेवी भी इन्हीं के साथ साधु वेश में रहती थीं। स्वामी रामानंद से दीक्षित होने के कारण उनकी रामात् शाखा के अनुयायी और अद्वितीय समाज सुधारक थे। इनके सम्बन्ध में शिव जी की उपासना की सूचना डाक्टर रामकुमार जी वर्मा ने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में दी है। इनके कुछेक पद ग्रंथ साहब में मिलते हैं।

धन्ना, पीपा के संगी और कबीर के समकालीन संत कवियों में रैदास का नाम प्रमुख है। इनका जन्म काशी में हुआ था। ये जाति के चमार थे। पिता

---

१. उनके वैयक्तिक शिष्यों में हम केवल शुद्र, जाट और परिगणित लोगों को ही नहीं वरन् मुसलमान और स्त्रियों को भी पाते हैं जिनमें एक का नाम पदमावती था।

का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। स्वामी रामानंद द्वारा दीक्षित थे। मीराबाई इन्हीं की शिष्या थीं।

रैदास और कबीर में वाद-विवाद हुआ करता था। ये अलमस्त फक्कड़ और सन्तोषी जीव थे। इनके आचार और विचार बहुत ही शुद्ध थे। मांस मदिरा का सेवन नहीं करते थे। सात्विक विचारधारा को अपनाने वाले इस संत के चमत्कार की कई घटनायें जनसमुदाय के बीच प्रसिद्ध हैं। अपने सम्बन्ध में इनकी यह उक्ति—

"जाति भी ओछो, करम भी ओछा
ओछा किसब हमारा
नीचे से प्रभु ऊँच कियौ है
कह रैदास चमारा।"

से इनके चमार जाति में उत्पन्न और जूते सीं सीं कर उदर पोषण करने का निश्चय हो जाता है।

रैदास की बानी और रैदास के पद गुजरात प्रांत के अन्तर्गत रहने वाले अनेक रविदास मतानुयायियों द्वारा गाये जाते हैं। उत्तरप्रदेश में भी चमार जाति के बीच इनकी बानी का बहुत प्रचार है। इनके पदों में दीनता सरलता और सरलता के साथ साथ निसंकोच रूप से भाव प्रकाशन के दर्शन होते हैं :

"हरि सा हीरा छाड़ि के करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिगें, सत भाषै रैदास॥"

खण्डन की प्रवृत्ति न अपनाते हुये उन्होंने निर्गुण मत का समर्थन किया है। अपने प्रभु को माधो नाम से सम्बोधित किया है। प्रेम और विराग की तो वे मूर्ति थे। भक्तमाल में रैदास जी की चमत्कार सम्बन्धी कई कहानियाँ मिलती हैं। १२० वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ था।

ऐतिहासिक परिस्थिति—कबीर के प्रादुर्भाव के पूर्व उत्तरी भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित हो चुका था। दिल्ली में तुगलक वंश का अन्तिम बादशह महमूद तुगलक राज्य करता था। विलास प्रिय होने के कारण शक्तिहीन और तेजहीन हो गया था इससे बड़े बड़े उमराव और नवाब अपनी अपनी नोच खसोट में लगे हुये थे। वे स्वयं बादशाह बनने का स्वप्न देख रहे थे। अवज्ञा और अनुशासनहीनता का बोलबाला था। इस समय समरकन्द के सुलतान तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण किया। मुलतान, फिरोजाबाद और दिल्ली को पादाक्रान्त और जनसंहार करता हुआ कुछ दिन बाद वह अपने देश को लौट गया। तातारी सेना की लूट खसोट और बर्बरता

से तत्कालीन भारतवासियों के हौसले पस्त हो चुके थे। बेचारे किसानों की बड़ी दुर्दशा थी। उनके खेत, जानवर, घर बार सभी नष्ट किये जा चुके थे। परिवार वियोग, अकाल और महामारी से त्रस्त जनता की रीढ़ टूट रही थी।

**राजनीतिक परिस्थिति**—सुल्तानियत का बोल बाला था। पर्याप्त यातायात साधनों के अभाव में तथा जो कुछ भी थे उनमें विलम्ब होने के कारण जनता पर किये गये अत्याचारों की पुकार शासकों तक नहीं पहुँच पाती थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ हो रही थी। अधिकांश सुलतान विलासी थे। जनता इनकी प्रसन्नता के हेतु इनके जीवन को आदर्श मानकर उसी में रंग रही थी। प्रजा के दुःख दूर करने की न तो उनमें भावना ही थी और न अवकाश। जनता निरावलम्ब हो मौन रहने में अपना कल्याण समझती थी। जो कुछेक हिन्दू शासक शेष थे उनकी भी दमखम जाती रही थी। वे चुपचाप अपनी ही खैर मनाया करते थे।

समय की गति से कुछ वर्षों बाद मुगल शासन स्थापित हुआ। राजनीतिक वातावरण में शांति के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे थे परन्तु समाज में जनता का शोषण चल रहा था। अधिकार की पूजा करने वाले तथा धर्म के कच्चे व्यक्ति शासकों का धर्म स्वीकार कर अपने पारस्परिक मनोमालिन्य की कसर शासकों से मिलकर निकालते थे। अपने मतावलम्बियों की संख्या वृद्धि शासक वर्ग की रुचि थी। राज्य प्रलोभनों एवं व्यापारिक सुविधायें प्रदानकर धर्म परिवर्तन करने के लिये लोगों को आकर्षित किया जाता था। हिन्दू समाज, जो अनेक आक्रामक जातियों से अप्रभावित हो अपने गौरव को किसी प्रकार बचाये हुये था, मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति द्वारा झकझोर दिया गया। उच्च जाति की अहमन्यता और पाखण्ड ने समाजस्वीकृत निम्न वर्ग की जातियों एवं उपजातियों को धर्म-परिवर्तन के लिये बाध्य किया। इस प्रकार हिन्दू समाज की अवस्था तीव्र गति से नीचे की ओर जा रही थी। विषमता, विशृंखलता और अधिकारपद का प्राबल्य था। हिन्दू-समाज का निम्न वर्ग जो सदियों से दबा हुआ चला आ रहा था उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर उच्चवर्गीय हिन्दुओं के प्रति अपने क्षोभ का प्रदर्शन किया। साधु सन्यासी फकीर और मुल्ला सभी समाज को अपने अपने ढङ्ग पर ले चलने के लिये प्रयत्नशील थे पर गुणों के अभाव से ये समाज को अधिक समय तक आकर्षित नहीं कर पाते थे। साधु वेश में मांस मदिरा व्यभिचार आदि से प्रभावित ये पाखण्डी समाज को पतन के गर्त में गिरा रहे थे।

इसी समय पहुँचे हुये संतों में अग्रणी संत कबीर का प्रादुर्भाव हुआ।

## जीवन-वृत्त

सन्त कबीर की जन्म तिथि के संबंध में अनेक मतभेद हैं। कुछ ही विद्वान् 'कबीर कसौटी' के आधार पर इनका जन्म संवत् १४५५ जेष्ठ शुक्ला १५ को मानते हैं। कबीर पंथ के अनुयायियों के बीच इसी तिथि की मान्यता है परन्तु.....

"१४५५ साल गये चन्द्रवार एक ठा गए।
जेष्ठ सुदी बरसाइत को, पूरनवासी तिथि प्रकट भए॥"

( कबीर चरित्र बोध )

के आधार पर बाबू श्यामसुन्दर दास तथा आचार्य शुक्ल जी इनका जन्म संवत् १४५६ मानते हैं, क्योंकि ज्योतिष गणना के अनुसार उपर्युक्त दोहे में वर्णित तिथिवार और मास संवत् १४५६ में ही जाकर पड़ा था। डाक्टर बड़थ्वाल इनका जन्म संवत् १४२७ के आस पास निर्धारित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त दोहे के आधार पर ही जन्म के सम्बन्ध में दो मत मुख्य रूप से सम्मुख आये हैं। संवत् १४५५ के समर्थन में डाक्टर रामकुमार जी वर्मा और पंडित राम नरेश जी त्रिपाठी का नाम लिया जा सकता है। संवत् १४५६ के समर्थन में डाक्टर श्यामसुन्दर दास और आचार्य शुक्ल जी का आधार ऊपर की पंक्तियों में व्यक्त किया जा चुका है।

इनकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। श्रीमाधव जी द्वारा इन किंवदन्तियों का उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया गया है।

"कहते हैं जगत गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से ये काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए। लज्जा के मारे वह नवजात शिशु को लहरतारा के ताल के पास फेक आयी। नीरू नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया, उसीने उस बालक को पाला पोषा। यही बालक कबीर कहलाया। कुछ कबीर पंथियों की मान्यता यह है कि कबीर का आविर्भाव काशी के लहरतारा तालाब में कमल के एक अति मनोहर पुष्प के ऊपर बालक रूप में हुआ था। एक प्राचीन अमुद्रित ग्रन्थ में लिखा है कि किसी महान योगी के औरस और प्रतीचि नामक देवांगना के गर्भ से भक्तराज प्रहलाद ही कबीर के रूप में संवत् १४५५ जेष्ठ शुक्ला १५ को प्रकट हुए थे। प्रतीचि ने उन्हें कमल के पत्ते पर रख कर लहरतारा तालाब में तैरा दिया था और नीरू नीमा नाम के जुलाहा दम्पति जब तक आ कर उस बालक को नहीं ले गए तब तक प्रतीचि उनकी रक्षा करती रही। कुछ लोगों

का यह भी कथन है कि कबीर जन्म से ही मुसलमान थे और सयाने होने पर स्वामी रामानन्द के प्रभाव में आकर उन्होंने हिन्दू धर्म की बातें जानी।"

उपर्युक्त किवंदन्तियों तथा अब तक की खोजों के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि इनका लालन पालन नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति द्वारा हुआ था। अपने माता पिता का नाम कबीर को स्वयं न मालूम होने के कारण कुतरकी वाद विवाद करने वालों के सम्मुख इनको लज्जित होना पड़ता था।

जन्म की ही भांति इनकी जाति के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं।

"तूं ब्राह्मण मैं काशी का जुलहा बूझहू मोर गियाना।"

× × ×

"जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरषि हरषि गुन रमै कबीर॥
परिहरि काम राम कह बौरे। सुनि सिख बंधू मोरी॥
हरि को नांव अभै पद दाता कहै कबीरा कोरी॥

इससे यह अभास मिलता है कि वे जुलाहे थे, परन्तु हिन्दू जुलाहे थे क्योंकि हिन्दुओं में कोरी लोग पहले जुलाहे का कार्य करते थे और आज कल राजगीरी का पेशा करने लगे हैं। इनके जीवन का अधिकांश समय काशी में ही व्यतीत हुआ था और काशी इन्हें प्रिय भी थी। काशी पंडितों और अध्यात्म जिज्ञासुओं का आदि काल से केन्द्र रही है। कबीर के समय में भी स्वामी रामानन्द, रैदास आदि अनेक बड़े और छोटे भक्त अपने अपने पूर्वजों के निवास स्थान छोड़ कर काशी आ बसे थे। फिर कबीर का तो जन्म ही काशी नगरी के अन्तर्गत लहरतारा नामक ग्राम में हुआ था अतः उनका काशी से मोह होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने स्वयं इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं जैसे·····

१ "सकल जन्म शिवपुरी गवाया"
२. "जीव जल छाड़ि बाहिर भई मीना।
तजि ले बनारस मति भई थोरी॥"

हम लोगों की भाँति कबीर ने पाठशाला अथवा मकतब में शिक्षा नहीं प्राप्त की थी।

"मसिकागद छूवौ नहीं, कलम गहौ नहीं हाथ"

अपने पालन कर्त्ता नारू जुलाहे के व्यवसाय में सहायता पहुँचाने का कार्य उन्हें करना पड़ता था और यही उनके लिये आगे जब स्वयं वे गृहस्थी के संचालक रूप में जीवन क्षेत्र में उतरे तो सहायक सिद्ध हुआ। बचपन

से ही ये बड़े दयालु थे। कहते हैं जो कपड़ा ये अपने हाथ से बुनते थे, उसे साधु और गरीबों में बाँट दिया करते थे। दीन दुखियों और साधुओं की सेवा में इनका अधिक समय बीतता था और इस कार्य के लिये नीरू और नीमा दोनों ही इनको डाँटते भी रहते थे।

जब कबीर साहब बड़े हुए तो इनकी इच्छा गुरु करने की हुई। गुरु करने की प्रथा बहुत पुरानी है। गुरु से धर्म दीक्षा लेना आज भी विशेषकर काशी में अधिक दिखलाई पड़ता है लेकिन अन्य रीति रिवाजों की भाँति इसका भी महत्व अब धीरे धीरे कम हो गया है। विद्या प्राप्ति के लिये भी लोग गुरू किया करते थे। मुसलिम शायरों में यह प्रथा आज भी शेष है वे उस्ताद के पास जाकर अपने कलाम को ठीक कराते हैं और उनसे सलाह भी लेते हैं। कबीर साहब को गुरु करने की इच्छा हुई। उस समय के ख्याति प्राप्त गुरु रामानन्द जी के पास गये। वे राम की भक्ति का उपदेश देते थे। उनका मत था कि कोई भी पुरुष हो या स्त्री, हिन्दू हो अथवा मुसलमान परमेश्वर का भजन करने से और जीवन में संयम और नियम को अपनाने से परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। कबीर ने अपने अन्तर को टटोलने के पश्चात् स्वामी रामानन्द जी के मतों से साम्यता रखने वाले अंकुर प्राप्त किये एतदर्थ उन्होंने स्वामी रामानन्द जी से शिष्य बनाने के लिये याचना की। उनकी अस्वीकृति पर ये एक दिन एक पहर रात रहते ही काशी स्थित पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गये। स्वामी रामानन्द जी इसी घाट पर स्नान करने आया करते थे अतः नियमानुसार स्नान हेतु जब वे सीढ़ियों से उतर रहे थे अचानक उनका पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामानन्द जी तुरन्त ही पैर हटाकर राम राम कहते हुये आगे बढ़ गए। स्वामी जी के मुँह से उच्चरित राम राम शब्द को इन्होंने गुरु मन्त्र मानकर अपने को उनका शिष्य कहने लगे। जब स्वामी जी को इस प्रकार से शिष्यत्व ग्रहण करने की कथा मालूम हुई तो वे बड़े स्नेह से कबीर को अपना शिष्य मानने लगे।

मुसलमान कबीर पंथियों की मान्यता है कि कबीर सूफी फकीर शेख तक़ी के शिष्य थे। प्रो० सुधाकर जी ने दो शेख तक़ी की चर्चा की है प्रथम तो मानिकपुर वाले और दूसरे झूँसी वाले। कानपुर क्राइस्ट चर्च कालेज के संस्थापक और शिक्षा शास्त्री डा० वेस्टकाट ने भी 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' में कबीर को शेख तक़ी का ही शिष्य माना है। मतों में विभिन्नता होने के कारण आलोचकों ने कबीर की वाणी से इस सम्बन्ध में सहायता प्राप्त करने

का प्रयास किया और इस आधार पर कि "हम काशी में प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये" तथा आचार्य सुधाकर जी के इस विवेचन पर "उनके शिष्य धर्म दास गरीब दास भी उन्हें रामानन्द का शिष्य मानते हैं। भक्तमाल संवत् १६४२ हित हरि वंशव्यास, सं० १५५९, भी यही मानते हैं। मोहे सिन फनी काश्मीर वाले ( जिनका उल्लेख डाक्टर बड़थ्वाल ने 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' के आधार पर किया है ) भी रामानन्द को उनका गुरु बताते हैं।" स्वामी रामानन्द ही इनके गुरु थे यही मानना न्याय संगत है। कबीर व्यक्ति पूजक नहीं थे यह उनकी कृतियों की चर्चा के समय ज्ञात हो सकेगा, परन्तु गुरु के प्रति उनके हृदय में बड़ी श्रद्धा थी। उनके पदों में स्वामी रामानन्द जी का नाम जिस श्रद्धाभावना से ओत-प्रोत मिलता है उतना न तो शेख तक्की और न पीर पीताम्बर का जिनके लिये भी कबीर का गुरु होने की चर्चा लोगों द्वारा की गई है। जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि इनका विवाह लोई नाम की महिला से हुआ था। परन्तु कबीर पन्थ के विद्वानों का मत है कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही परन्तु कबीर ने उससे विवाह नहीं किया था। डाक्टर बड़थ्वाल कबीर का दाम्पत्य प्रेम धनिया नामक स्त्री से बताते हैं जिसका नाम बाद में बदल कर कबीर ने रमजनिया कर दिया था। कबीर के एक पुत्र और एक पुत्री थी। इस परिवार के पालन हेतु उन्हें करघे पर अधिक परिश्रम करना पड़ता था। वे घर पर बैठकर ही पैतृक व्यवसाय करते थे।

## "हम घर सूत तनहि नित ताना"

सतसंगी जीव होने के कारण सभी धर्मों के मतावलम्बी इनके यहाँ एकत्रित हुआ करते थे। एक बार इनके यहाँ बीस पचीस भूखे फकीर आ पड़े। रोज कमाने और खाने वाले फाकेमस्त कबीर के पास उस दिन आतिथ्य सत्कार के लिये कुछ भी नहीं था। अतः लोईने उन्हें चिन्तित देखकर कहा यदि आप आज्ञा दें तो मैं एक साहूकार के बेटे से जो मुझपर आसक्त है रुपये ले आऊँ जिनसे समय की परिस्थिति का सामना किया जा सके। कबीर ने कहा जाओ ले आओ। रुपये लेने के बाद लोई साहूकार के बेटे को उसके मनोरथ की पूर्ति करने का बचन देकर वापस आ गई। आतिथ्य सत्कार से निवृत्त होने के पश्चात् रात्रि के समय कबीर को लोई के प्रतिश्रुत होने की बात याद आई। उस समय घोर अंधेकार था और वर्षा भी हो रही थी। कबीर कम्बल ओढ़कर स्त्री को कन्धे पर बिठाकर साहूकार के घर पहुँचे। लोई को अन्दर भेज कर आप बाहर खड़े रहे। साहूकार के बेटे ने जब लोई के वस्त्रों और उसके पैरों

को देखा तो उसने आने के साधन के सम्बन्ध में प्रश्न किया। लोई द्वारा सारा वृतान्त सुनने पर वह बड़ा लज्जित हुआ और पैरों पर गिर कर उसने क्षमा माँगी।

उपर्युक्त कथा में अत्युक्ति भी हो सकती है क्योंकि कबीर साहब पाप की कमाई कभी स्वीकार न करते ऐसा प्रसिद्ध साहित्य मनीषी पंडित राम नरेश जी त्रिपाठी का मत है।

कबीर अपने पुत्र कमाल से सन्तुष्ट नहीं थे। इसका आभास

"डूबा बंश कबीरका उपजा पूत कमाल।
हरिको सुमिरन छाड़ि कै ले आया घर माल॥"

में मिलता है। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि यह उक्ति कबीर के शिष्यों द्वारा कमाल के कबीर सम्प्रदाय के प्रति उपेक्षा भाव को देखकर कही गई है। बुढ़ापे में कबीर के लिये काशी में रहना दूभर हो गया था। यश और कीर्ति वृद्धि के साथ साथ वाद विवाद की रियाज बढ़ानी पड़ रही थी। उनके स्पष्ट वक्ता होने के कारण विरोधियों की संख्या भी पर्याप्त थी। लोगों का ऐसा कथन है कि मगहर में प्राण त्याग करने से मुक्ति नहीं मिलती है अतः कबीर इस जनश्रुति की चुनौती को स्वीकार कर अन्त समय में मगहर चले गये थे। इस संबंध में उन्होंने कहा है :

"जो कबीर काशी मरे तो रामहि कौन निहोरा।"

× × ×

"जस काशी तस मगहर मोंसर हृदय राम जो होई॥"

संवत् १५७५ में इन्होंने मगहर (जिला गोरखपुर) में शरीर का त्याग किया था। केवल डाक्टर बड़थ्वाल को छोड़कर अन्य आलोचकों ने कबीर का मृत्युकाल संवत् १५७५ ही माना है। मरने के बाद उनके शव को हिन्दू जलाना चाहते थे और मुसलमान उसे दफन करना चाहते थे। इसी कशमकश में काफी विलम्ब के बाद जब लोगों ने कफन को उठाकर शव को देखा तो उसके स्थान पर फूलों के अतिरिक्त पार्थिव शरीर का कोई भी चिन्ह शेष नहीं था। हिन्दू और मुसलमानों ने इन्हीं फूलों को आपस में बाँट कर अपनी अपनी विधियों के अनुसार इनकी अन्तिम क्रिया संपादित की।

# कबीर

## कवि के रूप में

कबीर कवि हैं अथवा नहीं इस पर विचार करने के पहले काव्य क्या है इस पर विहंगम दृष्टि डालते हुये यदि हम अपने विचार तन्तुओं को आगे बढ़ावें तो अधिक अच्छा होगा। सौन्दर्य और प्रेम की भाँति कविता को भी शब्दों की परिधि के अन्दर समेटने की चेष्टा करना व्यर्थ है। मुख्यतः यह अनुभूति की वस्तु है। आदरणीय पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने कविता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि "कविता सृष्टि का सौंदर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है और कविता ही सृष्टि का जीवन प्राण है..... .....प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्माण्ड एक अद्भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सार गर्भित रसमयी कविता के आनन्द का स्वाद चखा "वही भाग्यवान है।"

मनुष्य सौन्दर्य प्रिय प्राणी है वह जहाँ कहीं भी शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श को रुचिकर लगने वाली पार्थिव वस्तुओं को देखता है आनन्दित हो उठता है। स्वभाववश वह उस आनन्दानुभव को दूसरों पर व्यक्त करने के लोभ को संवरण भी नही कर पाता है। वह वैखरी वाणी के माध्यम से यह प्रयास करता है कि जो कुछ मैंने अनुभव किया उसी भावना की जागृति सुनने वाले के मन में उसी रूप में हो जिससे तुलना में मेरे समान ही आनन्द उसको प्राप्त हो सके। परन्तु यह कार्य "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" की ही भाँति कठिन हुआ करता है। इसके लिये साधना की आवश्यकता हुआ करती है। मनुष्य की बुद्धि सीमित है उसकी भावनाओं की एक पहुँच हैं परन्तु सृष्टि और सौन्दर्य, जो कविता के स्रोत हैं, अनन्त रूप में फैले हुये हैं अतः मनुष्य अपने बुद्धितत्व और भावतत्व के सामंजस्य से इसको समेटने की चेष्टा करता है। जब वह देखता है कि बुद्धितत्व और भावतत्व के सामंजस्य के बाद भी उसकी अनुभूति व्यक्त नहीं हो पाती तब वह कल्पनातत्व और शैली, जिसमें उसका व्यक्तित्व और उसकी आत्मा छिपी रहती है, का आधार लेकर भावों की अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है।

भाषा समाजसापेक्ष हुआ करती है वह भाव प्रकाशन का प्रमुख माध्यम है। साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते हैं : व्यक्त और अव्यक्त।

विचारों को साधारण ढंग से प्रकट करने की क्षमता रखनेवाली भाषा व्यक्त भाषा के अन्तर्गत आती है। अव्यक्त भाषा के उदाहरण में हम पशु पक्षियों की बोली को सम्मुख रख सकते हैं। व्यक्त भाषा के दो अंग हैं प्रथम कथित, दूसरा लिखित। साधारणतया बोल चाल में कथित ( व्यक्त भाषा ) ही प्रयोग में आती है। परन्तु जब विचारों को चिरस्थायी रखने अथवा परोक्ष व्यक्ति तक पहुँचाने का मन्तव्य रहता है उस समय लिखित भाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

**कबीर की भाषा**—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भाषा समाज सापेक्ष हुआ करती है, समाज के साथ साथ इसमें भी परिवर्तन हुआ करते हैं। जिस प्रकार नदी की धारा अविच्छिन्न होने पर भी आगे बढ़ने के साथ साथ बदलती जाती है उसी प्रकार भाषा की परम्परा एक रहने पर भी धीरे धीरे अस्पष्ट रूप से बदलती रहती है यही कारण है कि कबीर की भाषा और आज की भाषा में जो व्याकरण के नियम और उपनियमों से नियंत्रित है, अन्तर दिखलाई पड़ता है। कबीर की भाषा कथित भाषा है इसका ध्यान रख कर ही हमें उसपर विचार करना न्याय संगत होगा। वे पढ़े लिखे नहीं थे यह उन्होंने स्वयं "मसि कागद छुवो नहीं, कलम गहो नहिं हाथ" में व्यक्त किया है। अतः लिखित भाषा के दृष्टिकोण को ध्यान से हटा कर कबीर की भाषा का रसास्वादन करने पर जो आनन्द हम सबों को मिलता है वह अनुपमेय है। कबीर धर्म गुरु थे, उपदेशक थे, शिष्यों के सम्मुख जब जिस भावना ने उभार मारा उसमें आन्तरिक अनुभूति का सम्मिश्रण कर उसे प्रस्तुत कर दिया। कबीर की भाषा के निर्णय करने के संबंध में इतना ही कहना उचित होगा कि उनकी भाषा बोल चाल की भाषा है। अपने समय की बोलचाल की भाषा पर जिस कोटि का अधिकार कबीर की साखी और भजनों में प्रतिलक्षित होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भावों को भाषा के जिस रूप में व्यक्त करना चाहा है उसे उसी रूप में शिष्यों के सम्मुख रखने में वे समर्थ हुये हैं। कबीर की साखियों और भजनों में कई प्रान्तीय भाषाओं के शब्द मिलते हैं। बृज भाषा, खड़ी बोली, अवधी, पूर्वी ( बनारस से आगे बिहार तक बोली जाने वाली भाषा ) मैथिली और पंजाबी आदि अनेक भाषाओं और बोलियों के शब्दों को स्वीकार कर उन्होंने जो कुछ कहना चाहा है उसे सर्वांग सुन्दर रूप में व्यक्त किया है। कबीर ने स्वयं कहा है मेरी बोली पूर्वी है। मेरी समझ में कबीर का मन्तव्य पूर्वी से रचनाओं में प्रयुक्त भाषा की ओर नहीं है वरन काशी में रहने के कारण घरेलू बोल चाल की भाषा से ही है। आचार्य

श्यामसुन्दर दासजी ने कबीर की भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं।

"कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, इसी से उनपर बाहरी प्रभाव बहुत अधिक पड़े। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उन में नहीं मिलती है। यह भी सम्भव है कि उन्होंने जान बूझ कर अनेक प्रान्तों के शब्दों का प्रयोग किया हो, अथवा शब्द भडार की कमी के कारण जब जिस भाषा का सुना सुनाया शब्द उनके सामने आ गया हो तब वही उन्होंने अपनी कविता में रख दिया हो। शब्दों को उन्होंने तोड़ा मरोड़ा भी बहुत है। इस के अतिरिक्त उनकी भाषा में अक्खड़पन है और साहित्यिक कोमलता का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं उनकी भाषा बिलकुल गँवारू लगती है पर उनकी बातों में खरेपन की मिठास है जो उन्हीं की विशेषता है और उसके सामने यह गँवारूपन खटकता नहीं।"

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में अधिकारी आलोचक पं० हजारी प्रसाद जी का अभिमत इसी प्रसंग के साथ लिखना अप्रासांगिक न होगा। "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है बन गया तो सीधे साधे नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाईश को नाहीं कर सके।"

कबीर की भाषा गँवारू है की ओर जो संकेत बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने किया है उसका उत्तरदायित्व कथित भाषा और कबीर की खीझ पर है जिसे वे पण्डित और काजी, अवधूत और जोगियों, मुल्ला और मौलवियों तक पहुँचाना चाहते हैं। समग्रतः कबीर अपने युग की बोल चाल वाली भाषा के बादशाह थे।

कबीर पढ़े नहीं थे। वे अलंकार, भाषा सौष्ठव, छन्द योजना आदि से अनभिज्ञ थे। काव्य मनीषियों के सत्संग से लाभान्वित होने वाले पाठकों को कबीर की रचनाओं में शुष्कता ही दृष्टिगत होगी। उन्होंने कवि कहलाने की इच्छा से कुछ भी नहीं कहा था। उनका कथन मुख्यतः उपदेशक के रूप में था। परन्तु अनजाने रूप में भी भावों की अभिव्यक्ति जिस सुन्दर ढंग से बन पड़ी है वह हिन्दी साहित्य के गौरव की वस्तु है। उनके भजन उच्चारण के दृष्टिकोण से सर्वाङ्ग सुन्दर बन पड़े हैं। इन भजनों की कसौटी एकमात्र ढपली ही रही है। ढपली पर जो शब्द गति के साथ चल सकें वहीं उनका स्थान निश्चित है। पिंगल शास्त्र के जानकारों को उनकी रचनाओं में अधिक दोष मिलेंगे। परन्तु कबीर की मौलिकता और आन्तरिक अनुभूति की गहराई से जो कुछ निकला

है वह बेलौस होने के कारण मन को प्रभावित करता है। उसमें हृदयतन्त्री के तारों को झंकृत करने का सामर्थ्य है। What comes from the heart that appeals to the heart* के आधार पर ही कबीर के भजनों का प्रचार आज भी अन्य कवियों की रचनाओं की अपेक्षा अधिक दिखलाई पड़ता है। पंडित हजारीप्रसाद जी का निम्नलिखित कथन इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है।

"कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बातें नहीं कही थीं उनकी छन्द योजना, उक्तिवैचित्र्य और अलंकार विधान पूर्णरूप से स्वाभाविक और अयत्न साधित हैं। काव्यगत रूढ़ियों के न तो वे जानकार थे और न कायल। अपने अनन्य साधारण व्यक्तित्व के कारण ही वे सहृदय को आकृष्ट करते हैं।"

कबीर की अनुभूति गहरी थी। वे संतसंगी जीव थे। उनकी दृष्टिपैनी थी। वे तत्व की बात को शीघ्र ही समझने वाले प्रत्युत्पन्नमति विचारक थे। जितनी गहरी डुबकी लगाकर अन्तर जगत के रहस्यों को इस कलाकार ने उद्घाटित किया है वैसे कम ही दृष्टिगत होते हैं। स्पष्ट वक्ता और निस्वार्थ भाव के कारण जो मन में होता था वही बिना लगाव के वाणी द्वारा समाज में प्रस्फुटित होता रहता था। समाज के जिस अंग का चित्रण करने बैठे उसकी कलई खोल कर रख दी चाहे बुरा लगे या भला। वे निडर थे अतः अपने जीवन को पवित्र बनाते हुये कहना ही उनका काम था।

इस सम्बन्ध में आचार्य सुधाकर जी के मत को भी उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ।

"साहित्य में न केवल सत्यका उद्घाटन होता है अपितु शिव और सुन्दर का संयोग भी होता है। यह संयोग जितना ही रसमय पद्धति पर किया जाता है काव्य उतना ही अनूठा बन पड़ता है। पर कबीर की रचनायें, एक विश्वास और ऐसा विश्वास, जिसका सम्बन्ध पूर्णतया साहित्य से नहीं है, के प्रचार एवं प्रसार के लिये लिखी गई हैं। कहीं-कहीं पर इन रचनाओं के भीतर काव्य के तत्वों का दर्शन भी हो जाता है अतएव कवि के रूप में भी कबीर की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। पर मत प्रचारक के रूप में उनका अपना विशिष्ट स्थान है।"

---

* जो अन्तःकरण से प्रस्फुटित होता है वही हृदयों को भी प्रभावित करता है।

कुछ ऐसे आलोचक भी हैं जो कबीर को कवि नहीं मानते उनमें प्रमुख आचार्य प्रवर पं० सीताराम जी चतुर्वेदी का मत, जो इस सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ।

"काव्य के साथ कबीर का गठबन्धन जिन्होंने किया है और काव्य का अध्ययन करने, काव्यानन्द लेने वालों के लिये जो कबीर को भी जोड़ दिया गया है उन्होंने न कबीर के साथ न्याय किया है और न काव्य रसिकों क। सर्वप्रथम नवरत्नों में कबीर की गणना की मिश्र-बन्धुओं ने और उसके पश्चात् तो सभी लोग कबीर को कवियों में गिनने लगे। किन्तु इन विद्वानों ने यह विचार नहीं किया कि कबीर साधु थे और उनकी वाणी एक विशेष मत या सम्प्रदाय से प्रेरित किसी दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन करने वाली है और वह दार्शनिक पक्ष केवल न्याय-शास्त्र के अनुसार तर्क सिद्ध नहीं है, वरन् अनुभव-सिद्ध हो सकता है। अतः जब तक वह अनुभव प्राप्त नहीं होता तब तक वह सब वाणी निरर्थक है। फिर उस पक्ष का दार्शनिक आधार इतना गूढ़, जटिल और ज्ञान-साध्य है कि केवल त्रिकुटी, कुंडलीनी, षटचक्र और नाड़ियों का परिचय मात्र प्राप्त कर लेने से उसका अर्थ नहीं स्पष्ट हो सकता और पूर्णतः समझ लेने पर और साध लेने पर ब्रह्मानन्द भले ही प्राप्त हो जाय किन्तु काव्यानन्द तो नहीं ही मिल सकता। अतः जब काव्यानन्द नहीं प्राप्त करा सकता तब वह काव्य के अध्ययन से बाहर रहना चाहिये। काव्य के अन्तर्गत उसका समावेश करना काव्य-रसिकों पर अनावश्यक भार डालना है और फिर कबीर के साथ भी तो न्याय नहीं हो सकता क्योंकि जो काव्य-रसिक कबीर में काव्य ढूढने का प्रयत्न करेगा वह निराश होगा। अतः कबीर की वाणी को काव्य की परिधि में लाना न तो न्यायसंगत है न युक्तिसंगत।"

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कबीर कथित भाषा के माने हुये अधिकारी, भाव प्रकाशन की क्षमता रखने वाले उपदेशक तथा अनुभूति के आगार थे। स्वाभाविकता, स्पष्टवादिता और भावाभिव्यक्ति के दर्शन जिस मजे हुये ढंग से कबीर की रचनाओं में होते हैं वे बरबस पिंगल ज्ञाताओं तथा सीखकर बनने वाले रसविज्ञों को भी यह कहने के लिये बाध्य करते हैं कि कबीर कवि थे और उस कोटि के थे जहाँ केवल दो एक को छोड़कर अभी तक हिन्दी साहित्य में कोई भी नहीं पहुँच पाया है।

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाई।
ए पुर पाटन ए गली, बहुरि न देखै आई॥

× × ×

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जा जगनाथ।
साध संगति हरि भगति बिन कछु न आवै हाथ॥

× × ×

पंडित सेती कहि रह्या, भीतर मेधा नाहिं।
औरू को परमोधता, गया मुहरका माहिं॥

साखियों की प्रामाणिकता को पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है। कबीर को समझने के लिये सबसे सरल और उत्तम साधन, साखी है।

"साखी आँखी ज्ञान की, समुझ देख मनमाँहिं।
बिन साखी संसार में, झगरा छूटत नाहिं॥"

आचार्य पं० रामचन्द्र जी शुक्ल साखियों को सम्प्रदायवाद का पोषक बताते हैं। वे उनका साहित्यिक मूल्य सिद्धों और योगियों की रचनाओं की भाँति साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र ही मानते हैं। परन्तु ऐसी धारणा शुक्ल जी की किस आधार पर बनी यह समझ में नहीं आता। पं० मुंशी राम जी ने इसका खण्डन बड़े ही मार्मिक शब्दों में किया है।

"यह निश्चय है कि कवि किसी प्रेरणा से ही काव्य का सृजन करता है। साखियों में परमात्मा की भक्ति या प्रेम ही मूलतः पाया जाता है, जिसके आधार पर सदाचारी और बुद्धिवादी समाज की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। प्रेम के प्रसंग को लेकर जिन पद्यों की रचना हुई है, उन्हें काव्य के अन्तर्गत मानना युक्ति संगत ही होगा।"

काव्य के तीन प्रमुख अंग—विचार, भाव और कल्पना में से साखियों में कल्पना तो अंशमात्र है, परन्तु विचार और भाव की गंगा यमुना के संगम की पवित्रता उसमें मिलती अवश्य है। कबीर की साखियाँ नैतिकता के दृष्टिकोण से अत्यन्त उच्चस्तर की हैं। यही कारण है कि हिन्दी का संत-साहित्य जिसमें कबीर की रचनायें प्रमुख हैं, विश्व में बेजोड़ हैं।

वास्तव में सम्प्रदायवाद के विरोध में तथा हिन्दू और मुसलमानों को सत्य की राह बताने के प्रयत्न में ही कबीर की वाणी कुछ उत्तेजित हो उठी थी, वे सम्प्रदायवादी नहीं थे। उनके असाम्प्रदायिक होने के प्रमाण उनकी साखियाँ ही हैं।

साखी दोहों के अनुरूप ही हैं। पिंगल शास्त्र की कसौटी पर ये अवश्य खरी नहीं उतरेगी परन्तु जनकल्याण के लिये अपेक्षित जो सन्देश और अनुभूति साखियों में सीधे सादे ढंग से प्रस्फुटित हुई है वह अन्य साहित्य साधकों में, ( केवल तुलसी, वृन्द और रहीम को छोड़कर ) नहीं दिखाई पड़ती है।

## कबीर के पद

कबीर सत्संगी थे यह उनकी रचनाओं तथा आलोचकों की विशद व्याख्याओं के आधार पर पहले ही स्वीकार किया जा चुका है। कबीरकालीन सत्संग में जब सत्संग करने वालों की संख्या इकाई के अन्तर्गत ही रहती थी तब उपदेशक दोहा अथवा छोटे छोटे चुटकुलों में तथ्यपूर्ण बातें बताने की चेष्टा करते थे। जब संख्या अधिक हो जाती थी तब वाद्य-यन्त्रों के साथ स्वर लय की मान्यता को स्वीकार कर साधक अपनी अनुभूति को पदों के रूप में शिष्यों के सम्मुख व्यक्त करते थे। उपर्युक्त सन्त समागम की पद्धति आजकल सम्भव नहीं है। ध्वनि प्रचारक यन्त्रों के आविष्कारों तथा समय के अनुसार परिवर्तित मान्यताओं ने मानव की रुचि में भी परिवर्तन ला दिया है। कबीर-कालीन सन्त समागम में ढफली के साथ जो शब्द जिस रूप में निकल पड़ा वही उसका उपयुक्त रूप बन गया, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सन्त समागम की अन्य विधियाँ उस युग में स्वीकृत नहीं थी अथवा उनका प्रचलन नहीं था। स्वामी रामानन्द तथा उनके पूर्वकालीन अन्य सन्तों ने धार्मिक नेता के नाते घूम घूम कर मौखिक रूप से अपने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर अनेक शिष्यों को उपदेश दिया था।

कबीर ने दस पाँच के बीच जब जो मन में आया अनुभूति से ओतप्रोत कर उसे प्रस्तुत किया। शिष्यों ने स्वर-लय को कसौटी मानकर उसे कसा। बिरासत के रूप में शिष्य-परम्परा ने इस साहित्य को एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी को सौंपने का क्रम बनाये रक्खा और आज भी कबीर पन्थ के मानने वालों को कबीर के अनेक पद कण्ठस्थ हैं जिन्हें वे अपने शिष्यों के बीच ढफली पर बड़ी धुन और लगन के साथ गाते रहते हैं।

समाज-स्वीकृत निम्न वर्ग में इन पदों को जिस लय और लगन के साथ गाया जाता है वह अनुभव की वस्तु है। चमार जाति में एक वर्ग ऐसा भी

होता है जो मांस मदिरा का प्रयोग नहीं करता है। वे 'भगत' के नाम से अपनी जाति के बीच पुकारे जाते हैं। सुना सुनी और लोग भी उनको 'भगत' कहकर ही सम्बोधित करते हैं। ये लोग दिन भर जूता सिलने के बाद शाम को ढफली लेकर अथवा बिना ढफली के कबीर के भजनों को गाते हैं। आज के तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले संसार में नियमों की जटिलता इन भक्तों के आचार विचार के सम्बन्ध में भी नहीं कहीं जा सकती है। कुछेक मदिरा अथवा ताड़ी आदि पी कर इन भजनों को अलमस्ती और फक्कड़पने के साथ गाते हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने कबीर के पदों का संग्रह घूम घूमकर इन्हीं भक्तों और कबीर पंथ के मानने वालों के मुख से सुनकर किया है।

कबीर के पदों की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इन पदों ने महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे व्यक्ति को आकृष्ट किया था। उन्होंने इन पदों का अंग्रेजी में अनुवाद कर पाश्चात्य समालोचकों को कबीर को समझने के लिये आमंत्रित किया था और इस नियंत्रण को स्वीकार कर जिन पाश्चात्य आलोचकों ने कबीर के अनुवादित पदों को सहृदयता के साथ पढ़ा, वे भारतीय साधना और साहित्य के विषय में अपनी पूर्व धारणाओं को बदलने के लिये बाध्य हुए।

इनके पदों में जिन विषयों की चर्चा की गई है उनका उल्लेख साखी प्रसंग में आ चुका है। क्योंकि कलाकार अपनी अनुभूति को विभिन्न रूप रंगों के आवरण तथा चित्रों में सजाकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है। कबीर का जो सिद्धान्त और मार्ग था उसी का प्रतिपादन उन्होंने, चाहे वे साखी हों, पद हों अथवा रमैनी हों, सभी में किया है।

परमात्मा कण कण में विद्यमान है। वह मन्दिर और मस्जिद की चहार-दीवारियों में, काबा और कैलास नामक स्थानों में तथा यौगिक क्रियाओं के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है। जब तक जिज्ञासु होकर आर्त, अर्थात् भक्त परमात्मा से मिलने के लिये आकुल-व्याकुल नहीं होता तबतक वह नहीं मिलने का।

**मोकों कहाँ ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में।**
**ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।**
**ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग वैराग में।**
**खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालाश में।**
**कहै कबीर सुनो भाई साधो सब स्वासों की स्वांस में।**

निर्मल मन होकर जो कोई भी प्रभु से मिलने की ललक और उत्कण्ठा रखता है, प्रभु उससे अवश्य मिलते हैं। पद की अन्तिम दो पंक्तियों में व्यक्त भाव-धारा को कबीर ने साखियों में भी व्यक्त किया है।

"जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।"

कबीर जाति-पाँति के विरोधी थे। उनमें समाज को स्वस्थ और स्वच्छ देखने की अभिलाषा थी अतः इस भाव को उन्होंने अपने अनेक पदों में व्यक्त किया है। कुछेक में सीधे, और कुछेक पदों में आड़े हाथों समाज के ठेकेदारों, विशेषकर मुल्ला और पण्डितों, को फटकारा है।

"सन्तन जात न पूछौ निर्गुनियाँ"
"अरे इन दोउन राह न पाई"

से प्रारम्भ होने वाले पदों से संगीतात्मकता के साथ साथ व्यंग्यात्मक ढंग से सीधा सी बात बड़ी चुभती हुई शैली में कही गई है। भाषा भाव प्रकाशन के अनुरूप ही बन पड़ी है। निर्गुनियाँ के भाव में उनके निर्गुण मत के प्रतिपादन की भावना भी समाविष्ट है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके पद समाज में फैले हुये जाति-भेद रूपी झाड़ झंखाड़ों को उखाड़ने के लिये पैने औजार का काम करते हैं।

इनके पदों में सांसारिक असारता का जिस रूप में वर्णन मिलता है वह अनुपमेय है। माया और मोह से आसक्त इस शारीरिक सम्बन्ध का अस्तित्व क्षणभंगुर है। रूपकों द्वारा काया के नष्ट होने की क्रिया का वर्णन सजीव है। उदाहरणार्थ :—

"मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै विर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारी कहै नर मेरा॥
पेट पकरि कै माता रोवै बाँह पकरि कै भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवे हँस अकेला जाई॥
जब लगि माता जीवै रोवे बहिन रोवे दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर वासा॥
चारगजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाया फूँकि दियो जस होरी॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा॥

घर की तिरिया देखन लागी ढूढ़ी फिरी चहूँ देसा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो छाड़ो जग की आसा ॥"

पद मार्मिकता और यथार्थ से परिपूर्ण है। इसे पढ़ने के पश्चात् पाठक स्वतः अनुभव करने लगते हैं कि काया नश्वर है, संसार के नाते झूठे हैं और सभी स्वार्थ के बन्धन हैं।

कबीर का निम्नलिखित पद उन्हें भाग्यवादी मानने के लिये उत्साहित करता है :—

"करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ का बन में विपति परी।
कहै वह फन्द कहाँ व पारधि कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लेगो, रावन सुबरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरगिट जोनि धरी।
पाण्डव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु जौ भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही।"

परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ अधिक न कह कर यही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि वे भारतीय सन्तों से प्रभावित थे। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते थे। पाप पुण्य की व्याख्या को स्वीकार करते थे और मानते थे कि सत्कर्मों से मन का मैल दूर होता है। अंधकार को दूर कर प्रकाश में लाने वाले गुरु की श्रद्धा करते थे और उसे तो प्रभु से साक्षात्कार कराने के कारण अधिक भी महत्व प्रदान किया है। इस भाव को भी उन्होंने व्यक्त किया है :—

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी उन गुरु की जिन गोविन्द दिया बताय ॥"

इस प्रकार यदि वे भाग्य पर विश्वास करते हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

उनके पदों में साधारणतः अज्ञात रहस्यों का उद्घाटन भी मिलता है। यथा :—

"पायो सत नाम गरे के हरवा।
सांकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाचक हरवा।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्हीं जब चाहो तब खोलो किवरवा ॥

प्रेम प्रीति की चुनरि हमारी जब चाहौं तब नाचौ सहरवा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐवै एही नगरवा ॥"

उनकी विरहिणी आत्मा जिसे संभोग का सौभाग्य प्राप्त हो चुका था कितनी सरलता और मन को हलकोरे देने वाले शब्दों में निवेदन करती है कि :—

"कैसे दिन कटिहैं, जतन बताये जइयो।
एहि पार गंगा वाहि पार जमुना
बिचवाँ मड़इया हमको छवायै जइयो॥
अँचरा फारि कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयो॥"

कबीर के पदों में भाषा की लपेट के साथ जो भाव गुम्फित हुये हैं वे सीधे मन पर प्रभाव डालने में समर्थ हैं। उनमें पाठकों को आकर्षित करने की शक्ति और अद्भुत क्षमता है।

साखियों से कबीर के सिद्धान्त पदों की अपेक्षा अधिक आसानी से समझे जा सकते हैं। परन्तु इतना तो निर्विवाद सत्य है कि कबीर को जन सम्पर्क में लाने और प्रतिष्ठा तथा ख्याति अर्जन कराने में जितना महत्त्व पदों का है उतना उनकी साखी का नहीं है। उनके पदों को प्रातःकाल उठने वाले गंगा प्रेमी, संगीत साधक, भक्त और जाने अनजाने न जाने कितने लोग गाया करते हैं। कबीर की कीर्तिश्री को विकसित करने में पदों का बड़ा महत्त्वपूर्ण योग है।

## कबीर की परम्परा को अपनाने वाले अन्य कवि

साधारणतया कबीर ने जो परम्परा अपने युग में स्थापित की उसके दो विभाजन स्वीकार किये जा सकते हैं।

( १ ) साहित्यिक ( अ ) विषय की दृष्टि से
( ब ) छन्द योजना की दृष्टि से
( २ ) सैद्धान्तिक।

कबीर के पश्चात् कुछ समय तक उनकी परम्परा को पूर्णतः प्रधानता देते हुये सन्तों ने अपने उद्गार व्यक्त किये। वे कबीर से साहित्यिक और

सैद्धान्तिक दोनों ही रूपों से प्रभावित थे। इन लोगों में धर्मदास, सुखनिधान दास, सुन्दरदास, नानक, सहजोबाई, दयाबाई और इन्द्रावती का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। धर्मदास जी जाति के कसाधन बनिये थे। बाँधवगढ़ में धन सम्पन्न होने के कारण आर्थिक चिन्ता से मुक्त रहते थे। स्वभाव से धर्मात्मा और अतिथि प्रेमी थे। अतः साधु समागम ने उनकी धार्मिक भावना को पुष्ट कर दिया था। यात्रा करते समय कबीर के सम्पर्क में आकर इन्होंने मूर्ति पूजा और तीर्थव्रत आदि से चित्त हटाकर आन्तरिक जिज्ञासु के रूप में संत मत का प्रतिपादन किया। "अमर सुखनिधान" नामक ग्रंथ में इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तृत रूप में लिखी है। कबीर के उपरान्त कबीर की गद्दी इन्हीं को प्राप्त हुई थी। इन्होंने कबीर की ही भाँति पदों में अपनी भावाभिव्यक्ति की है।

"मोरा पिया बसै कौन देश हो।
अपने पिया के ढूँढन हम निकसी कोई न कहत सनेस हो॥
पिय कारन हम भई हैं बावरी धर्‌यो जोगिनिया कै भेस हो।
ब्रह्मा विष्णु महेस न जानै का जानै सारद सेस हो॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन हम सब सहत कलेश हो।
उहाँ के हाल कबीर गुरू जानैं आवत जात हमेस हो॥"

इनकी गद्दी छत्तीसगढ़ में विद्यमान है। कबीर के उपरान्त धर्मदास और धर्मदास के बाद सुखनिधान का उल्लेख मिलता है। इनका साहित्य गहराई में यद्यपि कबीर की भावभूमि तक नहीं पहुँचता है तथापि आध्यात्मिक विरह इनमें कम उत्कृष्ट नहीं है। धर्मदास की भाँति प्रारम्भ में ये भी साकार उपासक थे। इनकी रचनाओं में पूर्वी भाषा के शब्द अधिक मिलते हैं। सूतल, रहल ( रहना ) करल ( करना ) आदि शब्दों का प्रयोग इनके द्वारा किया गया है।

इसके उपरान्त गुरु नानक का नाम आता है। इनका जन्म सं० १५२६ वि० कार्तिक पूर्णिमा के दिन कल्यानदास खत्री की पत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ था। समय की परिस्थिति से प्रभावित हो उन्होंने सिख समुदाय नाम से संगठन कर हिन्दुओं का बड़ा भारी उपकार किया। कुछ लोग इन्हें राजा जनक का अवतार मानते हैं। कबीर की ही भाँति इन्होने भी निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर उनके प्रचार के लिये प्रयास किया था।

( १ ) हिन्दू-मुस्लिम एकता।
( २ ) एकेश्वरवाद।
( ३ ) मूर्ति पूजा का विरोध।

परन्तु ये कबीर की भाँति निर्गुण मार्ग के पोषक नहीं थे। इन्होंने कबीर की ही भाँति साखी और पदों में अपनी भावना को व्यक्त किया है।

"काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अल्येपा तोही संग समाई।
पुरुष मध्य ज्यों वास बसत है मुकुर माँहि जसछाई।
तैसेहो हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई।
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिन आया चीन्हे मिटे न भ्रम की काई।"

इनके बाद क्रम से सर्वश्री अंगददेव, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव, हरिगोविन्द, हरिराई जी, हरिकृष्ण जी, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह आदि इनकी गद्दी पर बैठे। उपर्युक्त सभी सिख सम्प्रदाय के धर्मगुरुओं ने रचनायें की हैं। परन्तु गुरु नानक और गुरु गोविन्द दास जी की रचनाओं का अन्य की अपेक्षा साहित्यिक महत्त्व अधिक है। उदाहरणार्थ गुरु गोविन्द सिंह जी का एक पद उद्धृत किया जा रहा है :—

"कह्या भयो दोउ लोचन मूँद कै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो।
न्हात फिरयो लियै सात समुद्रन, लोक गयो, परलोक गँव यो॥
बासु कियौ विखिजान सो बैठ कै, ऐस ही ऐस सुवैस बितायो।
साचु कहौं, सुन लेहु सभै, जिन प्रभु कियो तिन ही प्रभु पायो॥"

इसके बाद गुरु नानक की ही भाँति कबीर से प्रभावित संतों में ख्याति प्राप्त संत दादू का नाम श्रद्धा से लिया जाता है।

इनका जन्म संवत् १६०१ में वि० की चैत शुक्ला अष्टमी गुरुवार को अहमदाबाद में हुआ था। इनकी जाति के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। पं० सुधाकर द्विवेदी इन्हें मोची मानने के साथ साथ कमाल का शिष्य भी मानते हैं। भ्रमण करने के कारण इन्हें अनेक प्रान्तीय भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था। सिन्धी, मारवाड़ी, गुजराती, मराठी और तत्कालीन राज भाषा फारसी के जानकार थे। उनकी रचनाओं में बांगड बोली (राजस्थान) के शब्द अधिक मिलते हैं। इनकी मृत्यु संवत् १६६० में दराना नामक स्थान में हुई थी।

रज्जब की निम्नलिखित साखी से ज्ञात होता है कि इनका साक्षात्कार अकबर से हुआ था।

"अकबर साहि बुलाइया, गुरू दादू को आप।
सांचि झूठ न्योरो हुओ, तब रह्यो नाम परताप॥"

इन्होंने १२ वर्ष तक कठिन तपस्या करके योग की सिद्धि प्राप्त की थी। इससे ये चामत्कारिक कार्य करने की भी क्षमता रखते थे। परन्तु करामात करना ये पाप समझते थे। बाह्याडम्बर को त्याग कर अन्तर्मुख रहकर अन्तर्ज्योति के ध्यान, अभ्यास, स्मरण एवं सहज योग से ईश्वर में लय रहना ही सर्वोपरि साधना मानते थे। इन्होंने अपने मत को कोई सम्प्रदाय का रूप नहीं दिया था। परन्तु इनके शिष्यों ने प्रारम्भ में ब्रह्म सम्प्रदाय तथा बाद में दादू पंथ का नामकरण कर एक सम्प्रदाय खड़ा कर दिया है।

इनके सहस्रों शिष्यों में से १५२ शिष्यों की गणना मुख्यतः स्वीकृत हुई है। परन्तु इनमें रज्जब और सुन्दरदास जी को जो सम्मान और ख्याति प्राप्त है वह अन्य लोगों द्वारा अर्जित नहीं की जा सकी थी।

सुन्दरदास जी की रचनाओं का साहित्यिक महत्व है। इन्होंने छोटे बड़े मिलाकर ४८ ग्रंथ लिखे हैं जिसका प्रकाशन राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, ने सुन्दर ग्रंथावली के नाम से प्रकाशित किया है। पुरोहित श्री हरिनारायण जी बी० ए० ने १५०० पृष्ठों के इस ग्रंथ का सम्पादन कर वस्तुतः प्रशंसनीय कार्य किया है।

इसके बाद सहजोबाई, दयाबाई और इन्द्रावती का नाम आता है। इनके पदों में क्रमशः रागात्मक भावना, नीति विश्लेषण तथा एकता का आभास मिलता है।

विशेषकर कबीर पंथी अंगरखी पहनते हैं। गुरु को सर्वोपरि मानते हैं। सभी में निराकार की उपासना चलती है। उपासना और पूजा किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति कर सकता है। उपर्युक्त संतों का साहित्य हिन्दी ही में मिलता है। कबीरपंथी, सिख, दादू आदि सभी सम्प्रदायों में कर्म और जन्मान्तरवाद को स्वीकार किया गया है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में लगभग १० पंथ पाये जाते हैं जिनमें प्रमुख–पंजाब में नानक–राजपूताने में दादू–अलवर में लालदासी–नागौर में सतनामी–दिल्ली के आसपास सहज सम्प्रदाय–रोहतक में गरीबदासी–काशी में अघोरपंथी सम्प्रदाय प्रमुख हैं। इन सब संत कवियों के विषय में आचार्य शुक्लजी का मत, जो अप्रासांगिक नहीं है, उद्धृत कर रहा हूँ :—

"निर्गुण मानने वाले संत कवियों में ऐसे थोड़े ही हुये हैं जिनकी रचना संत कवियों में आ सकती है। उनमें मानव-जीवन की वह मिश्रित योजना नहीं है जो जन जीवन को आकर्षित कर सके। इस प्रकार यह परम्परा तो चलती रही पर साहित्य पर कोई सामान्य प्रभाव नहीं पड़ा। निर्गुण पंथियों

के सम्बन्ध में यह समझ लेना चाहिये कि उनके सम्बन्ध में दार्शनिक विचार-धारा देखना भ्रम है।

× × ×

किसी में वेदान्त के ज्ञान तत्व का अवयव अधिक मिलेगा किसी में योगियों के साधन तत्व का, किसी में सूफियों के प्रेम का। निर्गुण पंथ में जो योग-बहुल ज्ञान पंथ है वह वेदान्त से लिया गया है। प्रेमतत्व सूफियों का है न कि वैष्णवों का। अहिंसा और प्रियत्व के अतिरिक्त कवियों के सुरति और निरति शब्द बौद्ध संतों के हैं।"

शुक्लजी की इस सम्मति के विरुद्ध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन संत कवियों में दार्शनिक पुष्टता का अभाव मानते हैं। इनका कहना है कि संत कवियों की व्यंजनात्मक शैली है। आचार्य मुंशीराम जी ने भी शुक्लजी के मत का खण्डन 'कबीर बचनामृत' नामक ग्रन्थ की भूमिका में किया है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कबीर का निर्गुण मार्ग संत तुलसीदास के आविर्भाव के साथ ही क्षीण हो जाता है। सूर और तुलसी की सगुणोपासना ने साहित्यकों तथा संतों दोनों पर ऐसी धाक जमाई कि अन्य सभी मत, सम्प्रदाय और मार्ग धूमिल होकर अशक्त से प्रतीत होने लगे। यद्यपि कबीर की रमैनी से जिसमें दोहों और चौपाइयों का समावेश किया गया है तथा साखी और भजन से सभी कवि उत्तरोत्तर प्रभावित थे। जायसी ने पद्मावत की रचना दोहे और चौपाइयों में ही की थी। तुलसी दास जी की दोहावली, विनय पत्रिका और रामायण में हम कबीर की साखी, पद और रमैनी की ही छन्द-योजना का सुथरा और सवाँरा हुआ रूप पाते हैं। फिर तो यह पंथ जिसे तुलसी ने प्रशस्त किया सभी साहित्यिक साधकों के लिये राजमार्ग बन गया।

# मलिक मुहम्मद जायसी

# मलिक मुहम्मद जायसी

## प्रेमगाथा की परम्परा

इतिहास के अध्येता तथा साधारण बुद्धिजीवी सभी यह स्वीकार करते हैं कि जब विजेता विजित जाति के साथ रह कर जीवनयापन करने लगता है, उस समय संस्कार, भाव, विचार तथा रीति-रिवाज आदि का विनिमय जिस गति से होता है, उसको उस काल के पुरुष उसी समय समझने में असमर्थ रहते हैं। संघर्ष की स्थिति पार हो जाने पर जब व्यवस्था स्थापित हो जाती है उस समय परिवेक्षक निरीक्षणोपरान्त कुछ कहने में समर्थ होता है। सन् १९४७ में भारत के बँटवारे के बाद धार्मिक 'समता' होने पर भी जो हिन्दू पाकिस्तानी क्षेत्र से मध्य उत्तरप्रदेश में आकर बसे उन्होंने, चाहे वे 'सिन्धी हो अथवा पंजाबी या बंगाली', उत्तरप्रदेश के छोटे से छोटे महत्वहीन त्योहारों को अपनाकर साथ ही साथ अपनी वेश-भूषा तथा खानपान से उत्तरप्रदेश में बसनेवाले नागरिकों को प्रभावित किया है। ठीक ऐसी ही कुछ परिस्थिति उस समय भी होगी जिस समय मुसलिम जाति विजेता रूप में हिन्दुओं के साथ भारतवर्ष में रहने की चेष्टा कर रही थी। उनका अपना अस्तित्व बने रहने पर भी उनके भावों और विचारों में सामंजस्य स्थापित हो रहा था। धार्मिक कट्टरता का भूत कुछ कुछ उतर रहा था। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति के वशीभूत हो दोनों ही शान्ति की इच्छा से एक दूसरे के सम्पर्क में आ रहे थे। कबीर की वाणी ने धार्मिक कट्टरता को दूर कर मानव मानव से प्रेम करने का जो उपदेश दिया था, वह जनता की क्रियाशीलता में प्रतिध्वनित होने लगा था। धार्मिक विवाद व्यर्थ है, ईश्वर एक है, कुछेक को छोड़कर सभी स्वीकार करने लगे थे। ऐसे ही समय में कतिपय सन्त भावुक मुसलमान कवियों का समुदाय अभ्युदित हुआ, जिसने हिन्दुओं के घरो की प्रेम कहानियों को हिन्दी भाषा में छन्दबद्ध कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। इन कहानियों के वर्णन में कवियों ने तत्कालीन धार्मिक कट्टरता को दूर ही रखा है। वे उदार रहे हैं। वर्णन शैली में दूसरे धर्म के प्रति कहीं भी खीझ दृष्टिगत नहीं होती है। कथावस्तु में कवि-कर्म अपेक्षित कल्पना से अवश्य काम लिया गया है और उससे वर्णन में सजीवता ही आई है।

प्रेम चिरन्तन है, शास्वत है। वह जीवन के स्थायी भावों में एक प्रमुख स्थान रखता है। अतः इसका जनजीवन में समावेश भी आदि काल से ही

चला आ रहा है। परन्तु प्रस्तुत शीर्षक, प्रेमगाथा की परम्परा में प्रेम से तात्पर्य दाम्पत्य प्रेम के आस-पास की पृष्ठभूमि से ही है। जायसी के पूर्व संस्कृत साहित्य में प्रेम-कथाओं की अनेक चर्चायें मिलती हैं। शकुन्तला-दुष्यन्त, अर्जुन-उर्वशी आदि की प्रेम गाथायें संस्कृत साहित्य में जिस अनुपमेय ढंग से वर्णित हुई हैं वह साहित्य के गौरव की वस्तु है। परन्तु राजाओं तथा समाज के उच्चवर्गीय सदस्यों के आन्तरिक जीवन से ही लोकप्रवृत्ति का परिचय नहीं मिलता है। हिन्दी में प्रेमगाथाओं की चर्चा करने वालों में प्रमुख नाम जायसी का लिया जाता है। जायसी के समसामयिक कवियों ने प्रेम सम्बन्धी अनेक आख्यानों का सृजन किया है। इन लौकिक आख्यानों में ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यंजना के दर्शन होते हैं। कबीर के उपदेश जिनमें वेद, पुराण का खण्डन एवं निराकार उपासना पर जोर दिया गया था, जनता के अभ्यन्तर को छूने में असमर्थ से हो रहे थे। अतः बिना किसी कल्पित मूर्ति के आध्यात्मिक चिन्तन, चाहे वह ईश्वर के प्रति ही क्यों न हो पल्लवित नहीं हो सकता है। प्रेम की पीर को पहिचानने वाले इस युग के कवियों ने, जिनका अध्ययन पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा अधिक था, इस दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर ही कविता की हैं। प्रसिद्ध राजाओं, जिनमें मुद्रक तथा विक्रमादित्य आदि हैं, के आन्तरिक प्रेम व्यापारों का जो चित्रण हुआ है उसमें नाम की सत्यता के अतिरिक्त अधिकांश कल्पना मात्र ही है। जायसी ने स्वयं अपने पूर्वापर वर्णित प्रेम गाथाओं की तालिका प्रस्तुत की है।

"विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधू पाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राज कुंवर कंचर पुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ॥
साधु कुंवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीह्न वियोगू॥
प्रेमावति कह सुरसरि साधा। ऊषा लागि अनिरुद्ध वर बांधा॥

उपर्युक्त चौपाइयों में वर्णित कथाओं में से विक्रमादित्य और सपनावति तथा ऊषा-अनिरुद्ध की कथाओं को छोड़ देने से चार कथायें ऐसी हैं जिन्हें जायसी के पूर्व लिखा गया है और जिनका कथानक सर्व साधारण तक आज भी नहीं पहुँच पाया है। मृगावती और मधुमालती क्रमशः कुतबन और मंझन द्वारा लिखी गई हैं और इनपर समालोचकों ने अपने अपने विचार भी व्यक्त किये हैं। परन्तु मुग्धावती और प्रेमावती नामक ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

मृगावती के रचयिता कुतबन का समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दि के आसपास का निश्चित हुआ है। ये शेरशाह के पिता हुसेन शाह के आश्रित हो कर रहते थे। चिस्ती वंश के प्रसिद्ध धर्म गुरु शेख बुरहान इनके गुरु थे। 'मृगावती' में चन्दर नगर के राजा गणपति देव के पुत्र और कंचन नगर के राजा रूप मुरार की पुत्री मृगावती के प्रेम-व्यापार का वर्णन किया गया है। मृगावती का दर्शन करने के पश्चात् चन्दर नगर का राजकुमार उसपर आसक्त हो उसे जीवन सहचरी के रूप में देखना चाहता है परन्तु राजकुमारी उड़ने की कला को जानने के कारण उसे वियोग व्यथित अवस्था में छोड़ चली जाती है। राजकुमार अनेक कष्टों को सहन करता हुआ अन्त में रुक्मिणी नामक स्त्री को राक्षस से त्राण दिला कर पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। अन्ततोगत्वा मृगावती से राजकुमार का पुनर्मिलन होता है। राजकुमार मृगावती को पत्नी रूप में स्वीकार कर जीवन यापन करने लगता है। भाग्यचक्र से शिकार के समय हाथी पर से गिरजाने के कारण राजकुमार की मृत्यु हो जाती है और दोनो ही रानियाँ राजकुमार के साथ सती हो जाती हैं। राजकुमार की वियोगावस्था का सहारा लेकर कवि के साधक की कठिनाइयों का चित्रण किया है।

मधुमालती सूफी कवि मंझन की प्रसिद्ध कृति है। फारसी में इसकी प्रति की चर्चा पं० रामचन्द्र जी शुक्ल ने की है। परन्तु पूर्णरूप में इस ग्रन्थ की उपलब्धि अभी तक नहीं हो सकी है। जो कुछ अंश प्राप्त है उसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि यह भाषा और कथा की व्यापकता की दृष्टि से मृगावती की अपेक्षा अधिक रोचक है।

जायसी द्वारा लिखित चौपाइयों में जिन ग्रन्थों, नायकों अथवा नायिकाओं का नाम आया है, उनसे यह प्रतिभाषित होता है कि नायिका के प्रति कवियों का अधिक झुकाव रहा है और दूसरी बात जो दृष्टिगत होती है वह यह कि उस समय 'वती', प्रत्यय युक्त नामों का बोल बोला था। जैसे मधुमालती, मृगावती, प्रेमावती, मुग्धावती आदि। पृथ्वीराज रासो में भी पृथ्वीराज की पद्मावती, हंसावती, इन्द्रावती आदि रानियों की कथायें हैं।

वीरगाथा अथवा चारणकाल में भी मूलतः प्रेमकथानक की ही प्रमुखता व्यंजित हुई है। प्रेम कथानकों की सभी विशेषतायें इस काल की रचनाओं में होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि इन कहानियों में नायक की आध्यात्मिक वृत्ति के आधार पर उसकी युद्धपटुता और शौर्य प्रवृत्ति को प्रमुखता प्रदान की गई जिससे प्रेम-व्यापार गौण पड़ गया है। इसी गौणता

के कारण सूफी प्रेम-कथानकों के प्रेम प्रसंगों के साथ इनकी गणना न करने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि पद्मावती की वही लोक प्रचलित कथा रासों में भी ग्रहण की गई है जो कि जायसी के पद्मावत का आधार है।

आध्यात्मिक और धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ रचित अन्य संत कवियों के प्रेम-काव्य में १६वीं सदी के संत वरणीदास का 'प्रेम प्रकाश' और १७वीं सदी के संत दुखहरण का 'उपहावती' उल्लेखनीय है। अष्टछाप के कवि नन्ददास ने 'रूपमंजरी' नामक कल्पित प्रेम-काव्य लिखा था। इसमें स्पष्टतया हरि भक्ति प्रचार की भावना ही दृष्टिगत होती है। अन्य वैष्णव संतों द्वारा पौराणिक आधार पर जो प्रेम कथायें लिखी गई उनमें नल-दमन्ती, कृष्ण-रुक्मिणी, ऊषा-अनिरुद्ध की कथायें विशेष प्रचलित हैं। तीसरे प्रकार की रचनाओं के अन्तर्गत अर्ध ऐतिहासिक और लौकिक प्रेम-काव्यों की रचना को दृष्टि में रखकर, विशेषतया राजस्थान और गुजरात में प्रचलित, कतिपय प्रेम-कथाओं का उल्लेख किया जाता है। ढोलामारू के जो दोहे इस समय मिलते हैं उनको भाषा बहुत पुरानी नहीं है परन्तु उनमें क्रमबद्ध कहानी का आभास अवश्य मिलता है। १७वीं सदी में किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित "सारंगा सदै वृक्षैरादुआ" प्राप्त होता है। राजा शालिवाहन के पुत्र सदावृक्ष और उनकी पुत्री सावलगा की प्रेम कथायें, जो राजपूताने में लोकप्रिय रहीं हैं, मिलती हैं। इसी प्रकार १७वीं सदी के उत्तरार्ध में बीजो नामक नायक और सोरठ नामक नायिका की प्रेम कथा १३१ दोहों में "सोरठरादुहा", नाम से प्राप्त होती है। इसके उपरान्त ख्यातिप्राप्त दास कवि लिखित ११२ दोहों की पुस्तक "मदन सतक" मिलती है। इसमें किसी मदन कुमार और चम्पक माला के पारस्परिक स्वच्छन्द प्रेम की चर्चा है। जैन कवि मुल्ल लाभ ने संवत् १६१६ में दोहा चौपाई और माहा चन्द ने 'माधवानल कामकन्दला चरित्र' लिखा था। इनके अतिरिक्त आलम कवि का "माधवानल भाषा निबन्ध" और गणपति रचित "माधवानल दोहाबद्ध" की भी चर्चा विद्वानों द्वारा की गई है।

प्रेमाख्यानों में जायसी द्वारा रचित पद्मावत का जो स्थान है उसे उसकी सर्वप्रियता गुहार गुहार कर जता रही है। इसके कथानक की चर्चा अगली पंक्तियों में करने का प्रयास किया जायेगा। यहाँ तो इतना ही अभीष्ट है कि अन्य जितनी भी रचनायें भाषा और भावना से साम्य रखती हुई प्रकाश में आई हैं उनमें पद्मावत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जायसी के बाद प्रेमगाथा की यह परम्परा कुछ दिनों तक चलती रही। जहाँगीर के समय इस परम्परा में गाजीपुर निवासी उस्मान ( मान ) का नाम अधिक श्रद्धा से लिया जाता है। इनके

पिता का नाम शेख हुसेन था। ये निजामुद्दीन चिस्ती की शिष्य परम्परा में हाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होंने संवत् १६७० के लगभग चित्रावलि नामक काव्य की रचना की। इसमें नैपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूप नगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावलि की प्रेम कहानी है। इनके बाद जायसी द्वारा विकसित की हुई पद्धति पर रचना करने वालों में नूर मुहम्मद और कासिमशाह का भी नाम लिया जाता है। कासिमशाह का समय संवत् १७८२ के आसपास का निर्णीत हुआ है। इन्होंने 'हंस जवाहिर' नाम की कहानी को पदबद्ध किया है।

नूर मुहम्मद जौनपुर के रहने वाले थे। पं० हजारी प्रसाद जी इन्हें बादशाह मुहम्मदशाह का समकालीन मानते हैं। परन्तु प्रो० सुधाकर जी पाण्डेय का मत इससे भिन्न है वे इन्हें कासिमशाह का ही समकालीन मानते हैं। इन्होंने इन्द्रावती नामक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है। पं० रामचन्द्र जी शुक्ल इसका समय संवत् १७९६ तथा बाबू श्यामसुन्दर दास एवं प्रो० सुधाकर जी इसका समय संवत् १८०१ निर्धारित करते हैं। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा ( काशी ) द्वारा किया गया है। इसके अतिरिक्त नूर मुहम्मद साहब की हिन्दी की एक और रचना 'अनुराग बासुरी' के नाम से प्राप्त हुई है।

इन मुसलमान कवियों की देखा देखी हिन्दू कवियों ने भी प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की परन्तु उनमें वह बात नहीं आ पायी जो सूफी कवियों की रचनाओं में आयी हुई है। ऐसे काव्यों में लक्ष्मण सेन पद्मावती कथा, रसरतन काव्य, कनकमंजरी, कामरूप की कथा, चन्द्रकला, प्रेम पयोनिधि तथा हरिचन्द पुराण आदि हैं।

उपर्युक्त सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमगाथाओं की विशेषताओं को समालोचकों तथा साहित्य के अध्येताओं ने मुख्यतः तीन विचार-सरणियों में विभाजित किया है।

१. इन प्रेमगाथाओं की रचना भारतीय चरित्र काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवी शैली पर हुई है। कथा सर्गों अथवा अध्यायों में विभाजित न होकर घटनाओं से सम्बन्धित शीर्षकों के माध्यम द्वारा विभाजित की गई है। प्रारम्भ में ईश्वर तथा राजा की बन्दना करके ही कथा-क्रम का प्रारम्भ किया गया है।

२. इन प्रेमाख्यानक काव्यों की भाषा अवधी है। जिसमें पूर्वी बोली के

शब्दों का भी समावेश हुआ है। कबीर की रमैनी की ही भाँति दोहा चौपाइयों का क्रम लेकर ही ये कहानियाँ आगे बढ़ी हैं।

३. हिन्दुओं के घरों की सरस प्रेम कहानियों को जिस सहृदयता के साथ इन मुसलिम कवियों ने वर्णन किया है वह वस्तुतः प्रशंसनीय है।

## जीवन-वृत्त

जब किसी कलाकार के जन्म, समय, माता-पिता और सगे सम्बन्धियों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं ज्ञात हो पाता है, उस समय आलोचक कलाकार की कृतियों में अवलोकन कर अपनी जिज्ञासा को शान्त करने की चेष्टा करता है। ठीक यही स्थिति जायसी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी उत्पन्न हुई है, जिसका समाधान उनके 'पद्मावत' तथा 'आखिरी कलाम' द्वारा करने का प्रयास किया गया है। आखिरी कलाम नामक पुस्तक सन् १५२८ ई० के लगभग बाबर के समय में लिखी गई। इसमें बाबर बादशाह की प्रशंसा सम्बन्धी उक्तियाँ मिलती हैं। इसी पुस्तक में जायसो ने अपने जन्म-समय के सम्बन्ध में संकेत किया है।

"भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी॥"

पद्मावत जो इनकी सर्वश्रेष्ठ तथा लोकप्रिय रचना है के निर्माण काल के सम्बन्ध में भी कवि ने निम्नलिखित चौपाई कही है।

"सन् नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा॥"

आखिरी कलाम से उद्धृत चौपाई से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जन्म संवत् ९०० हिजरी ( सन् १४९२ ई० ) के लगभग हुआ था और तीस साल के बाद वे कवि के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके थे। जिसकी पुष्टि 'सन् ९२७ अहा' से होती है क्योंकि पद्मावत ही कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

उपर्युक्त दोनों पंक्तियों का विश्लेषण एवं सामंजस्य करने के पश्चात् तथा अन्य किसी समीचीन मत के अभाव में जायसी का जन्म काल सन् १४९२ ई० ही उपयुक्त जान पड़ता है। जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनकी उपाधि थी और जायस नामक स्थान में रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। मूलरूप में इनका नाम मुहम्मद ही था। रायबरेली जिले के अन्तर्गत जायस एक बड़ा कस्बा और रेल का स्टेशन है। इनके जन्म काल की ही भाँति इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित मत अभी तक प्रकाश में नहीं आया है।

"जायस नगर धरम असथानू। तहाँ आई कवि कीन्ह बखानू ॥"

सम्बन्ध में भी दो मत हैं। पं० सुधाकर द्विवेदी और डाक्टर गियर्सन के साथ-साथ पं० रामनरेश त्रिपाठी का यह विचार है कि जायसी का जन्म कहीं और हुआ था और वे जायस में आकर बस गये थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल जी का मत इसके बिलकुल विपरीत है। उनका कहना है कि पद्मावत को लेकर जायसी ने थोड़े से पद रचे उसके पीछे वे जायस को छोड़कर कुछ दिनों तक इधर-उधर रहे। अन्त में जब फिर वे जायस में आकर रहने लगे तब उन्होंने इस ग्रन्थ को उठाया और पूरा किया। इसी बात का संकेत 'कवि कीन्ह बखानू' में मिलता है। 'तहाँ आई' से जायस उनका जन्म स्थान नहीं है इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। जायस वालों का कहना है कि जायसी का घर कन्वाने मुहल्ले में था। पद्मावत में कवि ने अपने कुछ एक मित्रों के नामों की चर्चा की है और वे सब जायस के ही रहने वाले थे।

"चारि मीत कवि मुहम्मद पाए। जोरि मिताई सिर पहुँचाए ॥
युसुफ मलिक पंडित बहु ज्ञानी। पहिले भेद बात वै जानी ॥
पुनि सलार कादिम मतिमाहां। खांडे दान उभैनिति बाहां ॥
मिया सलोने सिन्ध बरियारू। बीर खेतरन खडग जुझारू ॥
सेख बड़े बड़ सिद्ध बखाना। किये आदेष सिद्ध बड़ माना ॥"

जायसी का वंश एक ही पीढ़ी के बाद समाप्त हो गया था। उनके भाई के वंशजों में से एक के पास जो वंश-वृक्ष है उससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उनके पूर्वज जायस के ही रहने वाले थे।

उपर्युक्त मतों की विवेचना के फलस्वरूप इतना तो निश्चित ही है कि जायसी के जीवन का अधिकांश समय जायस में ही बीता था।

"मुहम्मद बांई दिसि तजा, एक सरवन, एक आँख" और "एक नयन कवि मुहमद गुनी" के आधार पर निर्विवाद रूप से यह स्वीकार किया जा चुका है कि जायसी कुरूप थे। बाँयीं आँख और बायें कान की प्रतिभा से वंचित थे। परन्तु यह दैव-कोप उन्हें जन्म से ही प्राप्त हुआ था अथवा किसी महामारी ने उनके जीवन के मध्य में अपना अमिट प्रभाव उनके शरीर पर छोड़ दिया था इस सम्बन्ध में समीक्षक एक मत नहीं हो सके हैं। जायसी को अपनी कुरूपता के लिये कभी भी संताप नहीं था। अन्यथा वह कवि हृदय पाकर अवश्य किसी न किसी पंक्ति में प्रकट हो पड़ता जैसा कि अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मिलटन की भावना विनम्रता लिये Does God expect exact labour light-denied में व्यक्त हुई है। वे प्रकृति के साथ

साम्यता स्थापित कर मन को आत्म संतोष प्रदान करते हुए दृष्टिगत हुये हैं।

"चांद जैस जग विधि अवतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा॥
जग सूझा एक नयनाहां। उआ सूक जस नखतन्ह माहां॥"

जायसी की वृत्ति का ठीक ठीक पता तो अभी तक नहीं लग पाया है, परन्तु आचार्य शुक्ल जी का मत है कि वे किसान का जीवन व्यतीत कर अपना उदर पोषण किया करते थे। जायसी का स्वभाव निर्मल और सरल था। वे विनम्रता के कायल थे परन्तु साथ ही साथ स्पष्ट वक्ता भी थे। जायस वालों का कहना है कि ये एक बार शेरशाह के दरबार में गये थे। शेरशाह इनके भद्दे एवं विकृत चेहरे को देख कर हँस पड़ा था। जायसी ने व्यंग युक्त हँसी का उत्तर बड़ी विनम्रता से निम्न लिखित दोहे के माध्यम से दिया था। "मोहि का हँससि कि कोहरही" अर्थात् तूं मेरी हँसी उड़ाता है या उस कुम्हार "जगत नियन्ता" की। इस पर शेरशाह बड़ा लज्जित हुआ और उसने क्षमा मांगी। कुछ लोगों का कहना है कि शेरशाह स्वयं जायसी का नाम सुनकर उनके पास आया था। उसी समय यह घटना घटित हुई थी। पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी इस घटना को बजाय शेरशाह के अवध के किसी रईस के साथ घटित होना बताते हैं।

इन्हें भगवत कृपा प्राप्त थी। इस सम्बन्ध में इनकी कई चमत्कार पूर्ण घटनाओं का उल्लेख पुस्तकों में भी मिलता है। कहा जाता है कि जायसी जब खेत पर काम करते थे उस समय अपना भोजन वहीं मँगवा लिया करते थे और सन्त स्वभाव के कारण आस पास के अन्य लोगों को भी जो क्षुधार्त्त होते थे साथ में खिला कर खाते थे। यह प्रथा भारत वर्ष में बहुत समय से चल आ रही थी। आज भी दक्षिण में कुछ एक ग्रामों में लोग घर में ही आवाज लगाकर 'यदि कोई भूखा हो तो भोजन करने आवे' कह कर लकीर पीटने के पश्चात् भोजन करते है। हाँ, तो जायसी भी जो कोई आस-पास दिखाई देता था उसी को साथ बैठाकर भोजन करते थे। एक दिन उन्हें इधर-उधर कोई भी पुरुष दिखाई नहीं पड़ा। कुछ समय प्रतीक्षा करने के पश्चात् उन्हें एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने निःसंकोच हो उसे आग्रह पूर्ण ढंग से बुलाया और एक ही साथ एक ही बर्तन में भोजन करने लगे। कोढ़ी के शरीर से पीब चू रहा था। कुछ पीब भोजन सामग्री पर भी आकर पड़गया था, कोढ़ी के मना करने पर भी जायसी ने पीब पड़े अंश में से ग्रास उठा कर मुंह में रख लिया। जायसी के ग्रास खा चुकने के पश्चात् ही वह कोढ़ी अदृश्य हो गया।

जायसी के चमत्कार की एक दूसरी घटना जिसने उन्हें अमेठी में ही

निश्चितरूप से जीवन यापन करने के लिये बाध्य किया था, इस प्रकार कही जाती है। अमेठी ( जिला सुलतानपुर ) के राजा पद्मावत के कुछ एक अंशों को एक भिखारी से, जो गा गा कर दरवाजे दरवाजे भीख मांगा करता था सुन कर प्रभावित हुये। विशेष कर इस दोहे पर.....

"कवल जो विगसत मानसर, बिनु जल गयउ सुखाई।
सूखि बेलि फिरि पलुहई, जो पिव सींचहि आई॥"

राजा बड़े ही मुग्ध हो गये। उन्हों ने फकीर से रचयिता का नाम पूछा और तत्पश्चात् मलिक मुहम्मद जायसी को एक सरदार द्वारा अमेठी बुलवा लिया। तब से जायसी अमेठी में ही रह कर जीवन यापन करने लगे। राजा के कोई सन्तान न थी। जायसी से राजा की मनोव्यथा छिप न सकी अतः उन्होंने राजा को पुत्रोत्पन्न होने के लिये आशीर्वाद दिया और इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी की कृपा से राजा का वंश चला।

तीसरी घटना उनके अन्तिम दिनों के आस पास की है। जनश्रुति के आधार पर यह कहा जाता है कि उन्होंने अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में अमेठी के राजा से कहा था कि "मैं किसी शिकारी की गोली से मारा जाऊँगा।" राजा ने अपना प्रियत्व प्रदर्शित करते हुये अमेठी के आस-पास के जंगलों में शिकार की मनाही करवा दी थी। एक दिन एक शिकारी को जंगल में बाघ दिखाई पड़ा और उसने आत्मरक्षार्थ उसपर गोली से वार किया परन्तु पास जाने पर उसने बाघ के स्थान पर जायसी को मृतावस्था में पाया। कहाजाता है कि योगबल से जायसी विभिन्न प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे।

जायसी को दाम्पत्य और सन्तान सुख प्राप्त था अथवा नहीं इस सम्बन्ध में अधिकृत रूप से अभी तक कुछ भी नहीं कहा जा सका है। आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने जनश्रुति के आधार पर ही इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा है:—

"कहते हैं कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दब कर या ऐसी किसी और दुर्घटना से मर गए। तब से जायसी संसार से और भी विरक्त हो गये और कुछ दिनों में घर-बार छोड़कर इधर-उधर फकीर हो कर घूमने लगे।"

उस समय के सिद्ध फकीरों में जायसी का मान था। वे मलिक मुहम्मद निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में थे। इस परम्परा की दो शाखायें मिलती हैं। पहिली मानिक पुर-कालपी और दूसरी जायस के नाम से विख्यात हैं। जायसी ने इन दोनों ही की चर्चा की है। उन्होंने निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा के अन्तर्गत आने वाले जिन लोगों की चर्चा की है उनके नाम सैयद असरफ और शेख मोहिदी "मुहीउद्दीन" है। सैयद

असरफ जायस और शेख मुहीउद्दीन कालपी वाली परम्परा से सम्बन्धित हैं। जायसी उदार थे अतः उन्होंने संकीर्णता को त्याग कर अपने सम सामयिक प्रसिद्ध सन्तों और धर्म गुरुओं की वन्दना की है। वे वाद विवाद से दूर रहने वाले एकान्त साधक थे। सरल हृदय और उदारवृत्ति ही उनकी धरोहर थी जिसका दामन उन्होंने जीवन के आदि से अन्त तक कभी भी नहीं छोड़ा था। वे सतसंगी जीव थे। जहाँ जो कुछ अच्छा देखा उसका सारतत्व सरल हृदय से स्वीकार कर रचनाओं में अभिव्यंजित करना ही उनका लक्ष्य था। उन्होंने सूफी मुसलमान फकीरों, गोरख पंथी, वेदान्ती, तथा हिन्दुओं की पौराणिक कहानियों से बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की थी। उनको वेदान्त और यौगिक क्रियाओं का भी ज्ञान था परन्तु उनका ज्ञान बाह्याधार पर ही आधारित न होकर आन्तरिक अनुभूति पर भी अवलम्बित रहता था। ज्ञान उनके लिये अपच नहीं हो गया था और न वे उसके बोझ से ही दब से रहे थे। ज्ञान संज्ञा के अन्तर्गत आनेवाली जो कुछ भी वस्तु उनके पास थी वे उसे पंडितों का प्रसाद ही मानते थे।

"हौं पंडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देई डगा॥"

वे विधि विधान के पोषक थे परन्तु धर्मान्ध न होकर ज्ञान चक्षुओं से जो कुछ आत्मसात करते थे उसे सीधे सादे शब्दों में प्रस्फुटित किया करते थे।

इनके रचित ग्रन्थों की संख्या २१ बताई जाती है किन्तु अभी तक केवल चार ही कृतियाँ प्रकाश में आ सकी हैं जिनके नाम पद्मावत, आखिरी कलाम, अखरावट, और कहारानामा हैं जायस के रहने वाले इसके अतिरिक्त पोस्ती नामा और नैनावत नामक दो पुस्तकों को इन्हीं की लिखी हुई बतलाते हैं। इनकी मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं। काजी नसुरुद्दीन जायसी ने अपनी याददास्त "डायरी" में मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्यु काल चार रजब नव सै उन्चास हिजरी "सन् १५४२ ई०" दिया है। इस तिथि तथा "भा अवतार मोर नव सदी" का सामंजस्य करने पर मृत्यु के समय जायसी की अवस्था ४९ वर्ष की निश्चित होती है। आचार्य शुक्ल जी का कहना है कि जायसी ने पद्मावती के उपसंहार में वृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वतः अनुभूत सा जान पड़ता है अतः वे दीर्घायु अवश्य रहे होंगे। जनश्रुति के आधार पर उनका मृत्युकाल संवत् १६०० माना जाता है।

जायसी की कब्र अमेठी के राजा के वर्तमान कोट से पौन मील की दूरी पर आज भी वर्तमान है। मगरावन स्थित इस समाधि पर आज भी लोग इस मनीषी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये दूर दूर से पहुँचते हैं।

## पद्मावत का कथानक

पिछले अध्याय में यह संकेत किया जा चुका है कि जायसी विधि-परम्परा से प्रभावित भगवद्भक्त थे। अतः पद्मावत का प्रारम्भ उन्होंने जगतन्नियंता की वन्दना के साथ-साथ उसकी महत्ता एवं अनेक पौराणिक कथाओं का संकेत करते हुए किया है। स्तुति-खण्ड में उन्होंने परब्रह्म परमात्मा तथा अपने सम्बन्ध में कुछेक बातों का वर्णन किया है।

"अलख अरूप अबरन सो कर्ता। वह सब सों सब ओहिसों वर्ता॥
परगट गुपुत सो सरब विआपी। धरमी चीन्ह न चीन्हैं पापी॥
न ओहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटुंब न कोई संगनाता॥
जना न काहु न कोइ ओहिजना। जहं लगि सब ताकर सिरजना॥"

( परमात्मा के सम्बन्ध में )

"सेर साहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू॥"

( अपने समय के राजा के सम्बन्ध में )

कथा का प्रारम्भ सिंहल द्वीप की महत्ता से होता है। सिंहल द्वीप एक द्वीप है। दिया, सरन, जंबू, लंक, गर्भस्थल तथा महुस्थल समस्त द्वीपों से श्रेष्ठ सिंहल द्वीप का राजा गंधर्वसेन बड़ा प्रतापी है।

"गंधर्बसेन सुगंध नरेसू। सो राजा वह ताकर देसू॥
लंका सुना जो रावण राजू। तेहू चाहि बड़ ताकर साजू॥"

उसकी पुत्री का नाम पद्मावती है जो रूप और गुण दोनों ही से सम्पन्न है। कालान्तर में पद्मावती सयानी होती है। परिणय अवस्था प्राप्त करने पर भी जब पद्मावती का पाणिग्रहण नहीं हुआ उस समय वह अपनी मनोव्यथा हीरामन नामक एक अद्भुत तोते से, जो मनुष्य की वाणी को हृदयंगम कर उसी की वाणी में उत्तर देने की क्षमता रखता था, व्यक्त करती है।

"एक दिवस पद्मावति रानी। हीरामनि तह कहा सयानी॥
सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिनदिन मदन सतावै आई॥
पिता हमार न चालै बाता। त्रासहि बोल सकै नहिं माता॥
देस देस के बर मोहि आवहिं। पिता हमार न आँख लगावहिं॥"

तोते ने देश देशान्तर घूम-घूम कर अच्छे और अनुरूप वर की खोज करने का आश्वासन दिया। इस चर्चा को किसी ने राजा तक पहुँचा दिया राजा हीरामन तोते से बहुत रुष्ट हुआ और उसने उसे मार डालने के लिए आज्ञा दी। पद्मावती ने दूसरे के सीखे हुए वचनों को कहने की क्रिया तथा पंछी

की दीनता आदि का आधार लेकर उसके प्राणों की रक्षा की। इस घटना के बाद से तोते का मन खिन्न रहने लगा और उसने सिंहल द्वीप को छोड़ कर जाने का निश्चय भी कर लिया। एक दिन पद्मावती सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान कर रही थी हीरामन ने इसी अवसर को उपयुक्त समझ कर पद्मावती का साथ छोड़ देने का निश्चय किया और उड़ गया। कुछ समय बाद हीरामन तोता चारे के लोभ में पड़ कर बहेलिये द्वारा पकड़ा गया। बहेलिया उसे बाजार में बेचने के लिये ले गया। उसी बाजार में चित्तौर के एक व्यापारी के साथ एक दीन ब्राह्मण भी अपनी तकदीर अजमाने आया था। उसने सुग्गे के चेहरे-मोहरे से उसकी विलक्षणता का आभास पा कर उसे बहेलिये से मोल ले लिया। सुवे को लेकर वह चित्तौड़ चला आया और सुख पूर्वक जीवनयापन करने लगा। चित्तौड़ में उस समय राजा चित्रसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रत्नसेन राज्य कर रहा था। हीरामन तोते की प्रसंशा सुनकर राजा रत्नसेन ने ब्राह्मण को एक लाख रुपये देकर उसे मोल ले लिया। एक दिन रत्नसेन शिकार की इच्छा से बाहर गया था। उसकी रानी नागमती बड़ी रूपवती थी उसने शृङ्गार करने के पश्चात् निज रूप की प्रशंसा तोते से सुनने की इच्छा से हीरामन से प्रश्न किया कि क्या मेरे समान सुन्दर और कोई भी स्त्री इस संसार में है ? रानी के इस प्रश्न पर सुआ-हँसा और उसने सिंहल की पद्मिनी स्त्रियों का वर्णन करते हुए पद्मावती के रूप की प्रशंसा की। रानी नागमती पद्मावती की सौन्दर्य प्रशस्ति सुन कर तोते को शंका की दृष्टि से देखने लगी। राजा को अपने प्रेम पाश में जकड़े रखने की इच्छा से उसने धाय से तोते को मार डालने के लिये कहा। धाय ने तोते के प्रति राजा के प्रेमभाव का स्मरण कर उसे छिपा रखा। शिकार से लौटने पर जब राजा ने सूवे को न देखा तब वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। अन्त में तोता उसके सन्मुख उपस्थित किया गया। राजा ने तोते से सत्य भाषण की महिमा का वर्णन करते हुए सत्य-सत्य सब बातें कहने के लिये कहा। तोते ने रानी नागमती से सम्बन्धित समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने पद्मावती का रूप वर्णन सुनने की जिज्ञासा प्रकट की। तोते ने राजा को पद्मावती का नखसिख वर्णन सुनाया जिससे राजा के मन में पद्मावती के प्रति पूर्वाराग का अभ्युदय हुआ। नागमती को जिस बात की अशंका थी वही हो कर रही। राजा, पद्मावती को प्राप्त करने के लिए सूआ को मार्गदर्शक रूप में साथ ले कर जोगी का वेष बनाकर घर से निकल पड़ा। उसके साथ सोलह हजार कुँअर भी जोगी हो कर चल पड़े। मार्ग की कठिनाइयों को पार करते हुए कलिंग देश के राजा गजपति की सहा-

यता से समस्त साथियों सहित राजा रत्नसेन सिंहल द्वीप की ओर चल पड़ा। मार्ग में क्षार समुद्र, छीर समुद्र, दधि समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र और किलकिला समुद्र तथा मान सरोवर समुद्र को पार कर सभी लोग सिंहल द्वीप पहुँचे। राजा रत्न सेन जो जोगी के भेष में था सिंहल द्वीप स्थित महादेव जी के मन्दिर में पहुँच कर तपस्या करने लगा। और हीरामन राजा से यह कह कर कि पद्मावती वसन्त पंचमी के दिन इसी मंदिर में दर्शन करने आया करती है अतः उसी दिन तुम्हें उसके दर्शन प्राप्त हो सकेंगे पद्मावती के पास पहुँचा। हीरामन को देखते ही पद्ममावती ने पुनः जीवन प्राप्त किया। अधिक मोह और अधिक दिनों के बाद मिलने के कारण पद्मावती हीरामन को कंठ से लगा कर बड़ी देर तक रोती रही। सूआ ने पद्मावती से राजा रत्नसेन की गौरवगाथा तथा प्रेमाकर्षण जनित व्यथा का वर्णन कर उसे रत्नसेन के प्रति आकर्षित करना प्रारम्भ किया। पद्मावती के मन में राजा रत्नसेन का प्रेमांकुर धीरे-धीरे पल्लवित और विकसित होने लगा। उसने राजा को वरण करने तथा बसंत पंचमी के दिन उससे मिलने का भी निश्चय किया।

इसके पश्चात वसंत पंचमी के दिन पद्मावती मन्दिर में पहुँच कर राजा रत्नसेन के दर्शन कर राजा को हीरामन के वर्णन के अनुसार ही पाती है। राजा रत्नसेन पद्ममावती को देखते ही मूर्छित हो जाता है। पद्मावती राजा की मूर्छितावस्था में ही उसके हृदय पर यह लिख कर कि 'जोगी तू ने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा, जब फल प्राप्ति का समय आया तब तूं सो गया,' वापस लौट जाती है। होश आने पर राजा बहुत पश्चाताप करता है और आत्महत्या करने के लिये तत्पर हो जाता है। उसी समय कोढ़ी के वेश में महादेव पार्वती सहित आ उपस्थित होते हैं। पार्वती राजा रत्न सेन की प्रेम परीक्षा लेने के हेतु राजा से पद्मावती को भूल कर स्वयं उन्हीं को स्वीकार करने के लिए आग्रह करती हैं। राजा के इस उत्तर पर कि मुझे पद्मावती को छोड़ कर और किसी से कुछ प्रयोजन नहीं पार्वती और महादेव जी दोनों ही प्रसन्न होते हैं और महादेव जी चलते समय राजा को सिद्धि गुटिका दे जाते हैं।

सिद्धि गुटिका की सहायता एवं हीरामन द्वारा पद्मावती का सन्देश पाकर राजा रत्नसेन सिंहल द्वीप के आन्तरिक महल में जा पहुँचा। प्रेम-व्यापार में क्रोध नहीं करना चाहिये इसको मूल मन्त्र मानने के कारण राजा रत्नसेन गन्धर्व सेन के सिपाहियों के द्वारा बन्दी बना लिया गया। राजाज्ञा से जब उसे सूली हेतु प्रस्तुत किया गया उस समय महादेव जी ने भाट का रूप धर कर राजा गन्धर्व सेन को वध आज्ञा वापस कर अपनी कन्या पद्मावती को व्याह

देने की सलाह दी। राजा इस पर क्रुद्ध हो गया। युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर राजा गन्धर्व सेन ने जब महादेव तथा हनुमान जी को योगियों की ओर से लड़ते हुए देखा तो घबरा गया और बड़ी धूमधाम के साथ पद्मावती का पाणिग्रहण राजा रत्न सेन के साथ कर दिया।

उधर चित्तौर में नागमती विरहावस्था में अपने दिन व्यतीत कर रही थी। राजा के अभाव में चित्तौर की स्थिति भी बिगड़ रही थी। पच्छी द्वारा नागमती और चित्तौर का समाचार सुन कर राजा रत्न सेन अपार धनराशि तथा पद्मावती को लेकर स्वदेश की ओर चला। मार्ग में समुद्र ने याचक का रूप धर कर याचना की। राजा ने लोभ के वशीभूत हो कर उसे निराश ही वापस कर दिया। इस तिरस्कार के फलस्वरूप उसे राह में अनेक कष्ट उठाने पड़े। सब धनराशि एवं पद्मावती से भी हाथ धोकर तूफान के मध्य एक तख्ते के सहारे बहते बहते वह मूंगो के टीले के समीप आ लगा। वह मनोभिलषित वस्तु पाकर खो बैठा था इससे हतोत्साह हो गले में कटार मारना ही चाहता था कि समुद्र ने ब्राह्मण रूप धर कर उसे सान्त्वना दी। इधर पद्मावती मूर्छितावस्था में बहती बहती समुद्र की कन्या लक्ष्मी के हाथों आ पड़ी थी। पद्मावती के होश आने पर उससे समस्त विवरण जान कर लक्ष्मी ने उसे आश्वस्त कर रत्न-सेन से मिलाने का वचन दिया।

लक्ष्मी के प्रयास से राजा रत्न सेन और पद्मावती दोनों का पुनर्मिलन होता है। लक्ष्मी राजा रत्न सेन की प्रेम परीक्षा में सफलता प्राप्ति से प्रसन्न हो उठती हैं। चलते समय समुद्र और लक्ष्मी में राजा के समस्त साथियों तथा धनराशि के अपनी ओर से भी अमृत, हंस, राजपक्षी, शार्दूल, और पारस पत्थर ला उपस्थित किये। समस्त पदार्थों को ले कर साथियों सहित राजा रत्नसेन और पद्मावती सुख पूर्वक चित्तौर पहुँच कर जीवन यापन करने लगते हैं। राजा को नागमती से नागसेन और पद्मावती से कमलसेन नामक दो पुत्रों की प्राप्ति भी होती है।

चित्तौर की राज सभा में राघव चेतन नामक एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। यक्षिणी के प्रभाव से अपनी बात रखने के लिए उसने परिवा को ही दूज का चाँद दिखला दिया था जिससे रुष्ट होकर राजा ने उसे देश निकाले का दंड दिया। दूरदर्शी होने के कारण पद्मावती राघव को असन्तुष्ट होकर नहीं जाने देना चाहती थी। अतः उसने झरोखे पर से अपने हाथ का एक कंगन दान के बहाने से प्रदान किया। राघव चेतन रानी पद्मावती का रूप देखकर मूर्छित हो गया। होश आने पर उसने यह सोचा कि दूसरा कंगन प्राप्त करने

तथा राजा से अपने अपमान का बदला लेने का एक मात्र उपाय यही है कि अलाउद्दीन के समीप पहुँचकर उसे पद्मावती के सौन्दर्य के प्रति आकर्षित कर चित्तौर पर आक्रामक बना लाऊँ। यह विचार कर उसे कार्यान्वित करने के हेतु वह दिल्ली पहुँचा। दिल्ली पहुँच कर उसने अलाउद्दीन को कंगन दिखाते हुए पद्मावती के रूप का वर्णन किया। अलाउद्दीन ने सिरजा नामक दूत को भेजकर राजा से पद्मावती को तुरन्त भेज देने के लिए कहा और प्रतिउत्तर में नकारात्मक उत्तर प्राप्त होते ही चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। ८ वर्षों के अनवरत युद्ध के बाद भी जब किसी प्रकार का हल निकलने की आशा अलाउद्दीन को न हुई तो उसने राजा रत्नसेन के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा जिसमें पद्मावती को न माँग कर समुद्र से प्राप्त पाँचों वस्तुओं के पाने की इच्छा व्यक्त की गई थी। राजा ने विश्वासपात्र सरदारों की इच्छा के विरुद्ध इस प्रस्ताव को स्वीकार कर अलाउद्दीन का स्वागत किया। अकस्मात दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब देखकर अलाउद्दीन के मन में पद्मावती को प्राप्त करने की कामना पुनः जाग्रत हो उठी। अलाउद्दीन को विदा करने के अभिप्रायः से जब रत्नसेन उसके साथ-साथ चल रहा था तो अंतिम फाटक पर अलाउद्दीन ने उसे अपने सिपाहियों से कैद करा लिया। राजा रत्नसेन कैद कर दिल्ली पहुँचा दिये गए और उन्हें वहाँ अनेक प्रकार की यन्त्रणाओं से पीड़ित किया जाने लगा। इधर कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने कुमुदनी नामक दूती के द्वारा पद्मावती पर अपना प्रेमजाल फैलाने की चेष्टा की। अलाउद्दीन ने भी एक जोगिन को पद्मावती को बहका कर दिल्ली लिवा लाने के अभिप्राय से भेजा था। परन्तु इन लोगों की एक भी न चली और वे सब तिरस्कृत हो निराशावस्था में ही वापस चली गईं। कालान्तर में पद्मावती ने गोरा और बादल नामक विश्वस्त सरदारों से राजा को छुड़ा कर लाने की प्रार्थना की। इन दोनों सरदारों ने 'शठे शाठ्यम् समाचरेत' को मूल मन्त्र मानकर १६०० ढकी पालकियों के भीतर सशस्त्र राजपूत सरदारों तथा एक सर्वश्रेष्ठ पालकी में औजार सहित एक लोहार को बिठा कर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। गोरा के पुत्र बादल की अवस्था कम थी उसका गौना दिल्ली प्रस्थान के दिन ही आया था। पत्नी के आग्रह के विरुद्ध वह युद्ध हेतु दिल्ली चल पड़ा। दिल्ली पहुँच कर गोरा ने बादशाह के यहाँ यह खबर भिजवाई कि पद्मावती एक बार रत्नसेन से मिलने के पश्चात अपने आप को आप के हाथों सौंप देगी। अलाउद्दीन ने पद्मावती को राजा रत्नसेन से मिलने की आज्ञा प्रदान की। सर्वश्रेष्ठ पालकी राजा रत्नसेन के समीप पहुँचाई गयी। लोहार ने राजा की बेड़ी काट दी और राजा शस्त्र ले

घोड़े पर सवार हो बादल के साथ चित्तौर आ पहुँचा। इधर गोरा की अध्यक्षता में १६०० राजपूतों ने मुसलमानों का सामना करते हुए आत्मोत्सर्ग किया। गोरा भी सिरजा के हाथ से मारा गया।

राजा रत्नसेन ने चित्तौर पहुँच कर राजा देवपाल को उसके दुष्कर्म का प्रतिफल देने के लिए चढ़ाई कर दी। युद्ध में राजा रत्नसेन ने यद्यपि देवपाल को मार डाला परन्तु स्वयं भी उसके हाथों मारा गया। इधर अलाउद्दीन ने भी चित्तौर पर चढ़ाई कर दी। रानी नागमती और पद्मावती दोनों राजा रत्नसेन के साथ सती हो गईं। बादल ने प्राण रहते किले की रक्षा की परन्तु वह भी मारा गया और अन्त में चित्तौड़ के किले पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

पद्मावत का कथानक मिश्रित है। जायसी ने इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण किया है। रत्नसेन, अलाउद्दीन के अतिरिक्त केवल कुछ एक ही पात्र ऐतिहासिक हैं। सम्पूर्ण काव्य के अन्दर अन्योक्ति के द्वारा पाठकों को आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया गया है। ५७ खंडों में सम्पूर्ण कथा कहने के पश्चात ५८ वें खंड में उपसंहार के अन्तर्गत कवि ने स्वयं कहा है कि···

"मैं एहि अरथ पंडितन बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा॥
'गुरु सूआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोई न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू॥
प्रेम कथा यहिं भांति विचारहु। बूझ लेहु जो बूझै पारहु॥"

पद्मावत का कथानक सुगठित है। बीच बीच में प्रकृति वर्णन तथा पात्रों की मानसिक भावनाओं एवं आध्यात्मिक अन्योक्तियों का समावेश हुआ है परन्तु उससे कथा प्रवाह में कहीं भी व्याघात नहीं पहुँचा है। ध्वनियाँ सरस और प्रभावोत्पादक होने के कारण कथानक आकर्षक बन पड़ा है।

## जायसी का काव्य

जायसी द्वारा रचित जितनी भी पुस्तकें अभी तक प्रकाश में आई हैं उनमें पद्मावत उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति स्वीकार की गई है। अखरावट, आखिरी कलाम और कहारा नामा ( महरी बाईसी ) में कवि का क्षेत्र सीमित रहा है। विषय भी रागात्मक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख न होने के कारण सार्वजनिक नहीं हो सके हैं। यही कारण है कि जायसी की काव्य-प्रतिभा का मूल्यांकन करने के लिए आलोचकों ने पद्मावत को ही मुख्य आधार माना है। तुलसी के बरवै रामायण, रामलला नहछू, जानकी मंगल तथा पार्वती मंगल आदि रचनाओं की भाँति अखरावट, आखिरी कलाम और कहारा नामा भी आलोचकों को अधिक आकर्षित करने में सफल नहीं हो सकी हैं।

कबीर की काव्य-प्रतिभा पर दृष्टिपात करते समय हम यह स्वीकार कर चुके हैं कि काव्यतत्व के मुख्यतः चार प्रमुख अंग हैं। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली। इन चारों के सामंजस्य से कलाकार सत्यं शिवं और सुन्दरं से युक्त कला को जन्म देने में सफलता प्राप्त करता है। कल्पना भाव को पुष्ट कर भावाभिव्यक्ति में सहायता पहुँचाती है। बुद्धितत्व कल्पना को उच्छृङ्खल होने से बचाये रहता है। इससे सत्य और शिव का अस्तित्व सुरक्षित रहता है। इनके अतिरिक्त चौथा तत्व शैली है जिसमें कवि को आत्मा के दर्शन होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इस तत्व को अलंकार, शब्द-शक्ति और शब्द विन्यास से सहायता प्राप्त होती रहती है। सभ्यता के विकास के साथ साथ कविता स्वाभाविकता से कृत्रिमता की ओर उन्मुख हो रही है। बच्चे को जो वस्तुयें प्रारम्भ में रुचिकर होती हैं वे कालान्तर से अधिक देर तक उसे आकर्षित नहीं कर पाती हैं। आज के युग में तो रोटी की समस्या हल करने में ही समस्त मानव तथा उसकी शक्तियाँ लगी रहती हैं। यही कारण है कि वर्तमान कवियों की भाँति प्राचीन कवियों में रोटी रोजी का हल ढूँढ़ निकालने के स्वर नहीं प्राप्त होते हैं। उनमें साहित्यान्तर्गत आने वाले दोनों ही मुख्य विषयों ( अन्तर्जगत् और बाह्यजगत् ) की चर्चा मिलती है। प्राचीन समय में कवियों ने बाह्य जगत और अन्तर्जगत में सामंजस्य स्थापित कर एक अभिनव जगत् की सृष्टि करने का प्रयास किया है जहाँ देवताओं और मनुष्यों का सम्मिलन कराने की चेष्टा की गई है। जायसी ने पद्मावत में इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। वे लौकिक प्रेमाख्यान का वर्णन करते हुए अपने मानस के मोतियों को सूक्तियों के रूप में बीच-बीच में उपस्थित करते चलते हैं। उदाहरणार्थ :

नवो खण्ड नव पौरी, औ तहं बज्र केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरै पार॥

काव्य-तत्त्वों का समावेश कर आदर्श चरित्रों की सृष्टि करना कवि का अपेक्षित कर्म माना गया है। व्यास, बाल्मीकि, होमर आदि अनेक कवियों की भांति जायसी के बाद तुलसी दास ने भी आदर्श चरित्रों की चर्चा की है। हिन्दी साहित्य में यद्यपि तुलसी के राम और सीता के चरित्र अद्वितीय हैं परन्तु जायसी के पद्मावत द्वारा रत्नसेन और पद्मावती को जो स्थायित्व प्राप्त हुआ है वह कवि के कौशल की महानता का हमें अनुभव कराती है। पद्मावत् में पद्मावती और रत्नसेन के ही चरित्रों की प्रधानता है। अन्य चरित्रों की उद्भावना महाकाव्य के लक्षणान्तर्गत प्रधान चरित्रों के विकास के हेतु ही हुई है। राजा रत्नसेन और पद्मावती के साथ ही साथ कथा का आविर्भाव, विकास तथा अन्त होता है। राजा रत्नसेन और पद्मावती एवं नागमती तीनों ही सच्चे प्रेमियों का आदर्श पूरा करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

**भाषा**—जायसी की भाषा पूर्वी बोली से ओतप्रोत अवधी है। मुसलमान तथा कुरान के ज्ञाता होते हुए भी जायसी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। वे इस देश की भाषा को स्वीकार कर चुके थे। अतः सेवा की भावना से उन्होंने कविता के माध्यम से भारती की सेवा में जो कुछ भी अर्पित किया वह आज भी अपनी आभा से उसकी शोभा को बढ़ा रहा है। उनकी तत्सम पदावली, हिन्दी के प्रति अनुराग, उदार वृत्ति आदि को देखते हुए कुछ एक अध्येताओं का ऐसा विचार है कि हो सकता है जायसी भारत के परिवर्तित हिन्दुओं में से हुए मुसलमान हों और पैत्रिक अर्जित शब्दावली को सुरक्षित रखा हो। अतः भारतीय संस्कृति, कहानी, विचार आदि का दामन नहीं छोड़ सके। पद्मावत की भाषा के सम्बन्ध में डा० वासुदेव शरण जी का मत, जो समीचीन है, उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ। वे लिखते हैं "पद्मावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोल-चाल की देहाती आवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुतः वह अत्यन्त प्रौढ़, अर्थ सम्पृक्त समर्थ शैली है। अनेक स्थानों पर जायसी ने ऐसी श्लेषात्मक भाषा का प्रयोग किया जिसके अर्थ लगातार कई दोहों तक एक से अधिक पक्षों में पूरे उतरते हैं। कवि की इस प्रकार की श्लेषात्मक शैली आश्चर्यकारिणी है। सरल अवधी के शब्दों में जायसी ने अर्थों का चमत्कार उत्पन्न किया है। उनसे उनकी भाषा की असाधारण शक्ति ज्ञात होती है।"

जायसी की भाषा विषयक चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल जी ने अवधी की विशेषताओं का विशद वर्णन किया है। यहाँ पर दो एक बातें इस सम्बन्ध में भी कहना अनावश्यक नहीं होगा। 'जायसी का अवधी पर पूर्ण अधिकार था। वे उसकी बारीकियों से पूर्णतया अवगत थे। उन्हों ने अपने प्रयोगों में अवधी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों का ध्यान रखा है। अवधी में सज्ञा और सर्वनाम में 'ऐ' लग जाने से कर्ता कारक का बोध होता है। और यहीं 'ऐ' जब क्रिया के साथ लगता है तब लिये अर्थ का बोध होता है। जैसे...

**कर्ताकारक के रूप में :** राजै : राजा ने, सबै : सबने।

**लिये अर्थ में :** सुनै : सुनने के लिए।

जायसी की भाषा बोलचाल की सीधी साधी और सरस है। शुक्ल जी ने जायसी की भाषा पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है : 'कि जायसी की भाषा बहुत मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है। संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमल कांत पदावली पर अवलम्बित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की मिठास लिये हुए है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई जायसी की श्लेषात्मक भाषा और कोई जायसी द्वारा प्रयुक्त अवधी के माधुर्य पर रीझा है।

**भाव और कल्पना :** भावों का प्रकाशन भाषा द्वारा ही हुआ करता है। जायसी अवधी के प्रथम कवि ही नहीं उसके प्रवर्तक हैं। उन्होंने अवधी को घरों की चहारदीवारी से निकाल कर पठन पाठन के योग्य बनाया। अतः भाषा पर अधिकार होने के नाते जायसी ने जिस भाव को व्यक्त करना चाहा है वह सुन्दर बन पड़ा है। यद्यपि प्रेम की पीर का निजी अनुभव जायसी को नहीं हुआ था परन्तु प्रेमान्तर्गत आने वाले जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का प्रस्फुटन जायसी द्वारा किया गया है वह अनुपमेय है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि भावातिरेक में भाषा कुंठित हो जाती है। ( when the heart is full tongues become mute ) या तो हम आवश्यकता से कुछ अधिक कह जाते हैं अथवा कुछ छोड़ जाते हैं। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम भावों के तारतम्य पर ठीक से नियंत्रण न रखने के कारण कुछ ऐसा कह या लिख जाते हैं जो हास्यास्पद होता है। प्रबन्ध काव्य के रूप में पद्मावत अपने में अनेक भावों का समावेश किये हुए हैं। कवि ने छोटी-से-छोटी बात पर ध्यान रखकर उसका वर्णन करते समय भावों की अभिव्यक्ति करने में सफलता प्राप्त की है। जायसी की भाव प्रकाशन सम्बन्धी जो कुशलता है उसके दो रूप हैं।

प्रथम तो समस्त भावों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना तथा दूसरा उसकी अभिव्यक्ति से पाठक के मन को अपने साथ ले चलने में सफलता प्राप्त करना है। कथा वर्णन के साथ साथ भावों की पँखुड़ियाँ मानो खुलती जाती हैं। एक के बाद एक तत्सम्बन्धित भाव बड़ी ही कुशलता के साथ व्यक्त किये गये हैं। उदाहरणार्थ :—

"काल आइ दिखलाई सांटी। उठि जिय चला छांड़ि के माटी॥
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अर्थ द्रव्य संसारू॥
वही घड़ी सब भयो परावा। आपन सोइ जो परसा खावा॥
रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लागि काढन तेहि बेगी॥
हाथ झार जस चलै जुआरी। तजा राज ह्वै चला भिखारी॥
जब लगि जीव रतन सब काहा। मा बिनु जीवन कौड़ी लाहा॥
गढ़ सौंपा तेहिं बादल, गये टिकठि वसुदेव।
छोड़ी राम अयोध्या, जो भावै सो लेव॥"

राजा रत्नसेन की मृत्यु हो गई है। आत्मा का शरीर से सम्बन्ध बिछुड़ गया है। इसका क्रमशः कितना सरस एवं भावपूर्ण चित्रण हुआ है यह पाठक स्वयमेव अनुभव कर रहे होंगे। प्राणी जन्म होते ही क्रमशः परिवार, अर्थ तथा माया और माया के माध्यम से अन्य लोगों को जानता है और उसका अन्त होने पर वस्तुतः क्या स्थिति होती है इसका वर्णन देखिये :—

रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लागि काढ़न तेहि बेगी॥
हाथ झार जस चलै जुआरी। तजा राज ह्वै चला भिखारी॥"

और 'छोड़ी राम अयोध्या जो भावै सो लेव' से सजीव और क्या हो सकता है? भाषा और भाव के सामंजस्य से वर्णन सुन्दर बन पड़ा है।

कल्पना से भावों की पुष्टि में सहायता की बात को छोड़ कर यदि यह कहा जाय कि पद्मावत में कुछ एक पात्रों तथा कतिपय प्रधान घटनाओं को छोड़ कर अधिकांश काल्पनिक हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भावों की पुष्टि कल्पना के द्वारा न की गई हो ऐसी बात भी नहीं है। निम्नलिखित चौपाइयों से अभीष्ट मन्तव्य की पुष्टि हो जायगी इस विचार से उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ।

"रतन सेन बिनवा कर जोरी। अस्तुति जोग जीभ नहिं मोरी॥
सहस जीभ जौ होहिं गोसाई। कहि न जाइ अस्तुति जहँ ताई॥

काँच रहा तुम कंचन कीन्हा। तब भा रतन जोनि तुम्ह दीन्हा॥
गंग जो निर्मल नीर कुलीना। नार मिले जल होइ मलीना॥"

जायसी ने बुद्धि-तत्व का भी सहयोग स्वीकार किया है। उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं की एक बद्धता, विभिन्न अलंकारों की योजना, बारहमासा, नखसिख वर्णन आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने बुद्धि-तत्व की सहायता से भाव और कल्पना पर नियन्त्रण रखने की चेष्टा की है। परन्तु कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ उनकी कल्पना उच्छृंखलता का रूप धारण कर बुद्धि-तत्व का नियंत्रण स्वीकार नहीं करती है। उदाहरणार्थः—

"का पूछहु तुम धातु निछोही। जो गुरु कीन्ह अन्तरपट ओही॥
सिधि गुटिका अब भो संग कहा। भएउ राग, सत हिये न रहा॥
सो न रूप जासौं दुख खोलौं। गएउ भरोस तहाँ का बोलौं॥
जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै संदेस आन को पाती॥
कै जो पार हरतार करीजै। गंधक देखि अबहिं जिव दीजै॥
तुम जोरा कैसूर मयंकू। मुनि बिछोहि सो लीन कलंकू॥"

आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में "इन उक्तियों में सोन, रूप लोना, जोरा, कै आदि में श्लेष और मुद्रा का कुछ चमत्कार अवश्य है पर यह सारा कथन रस में सहायता पहुँचाता नहीं जान पड़ता। कुछ समाधान यह कह कर किया जा सकता है कि राजा रत्नसेन जोगी होकर अनेक प्रकार के साधुओं का सत्संग कर चुका था। इससे विप्रलम्भ दशा में उसका यह पारिभाषिक प्रलाप बहुत अनुचित नहीं। पर कवि ने इस दृष्टि से इसकी योजना नहीं की है। पारिभाषिक शब्दों से भरे कुछ प्रसंग घुसेड़ने का जायसी को भी शौक रहा है जैसे पद्मावती के मुँह से "तब लगि रंग न राचै जौ लगि होइ न चून" सुनते ही राजा रत्नसेन पानों की जातियाँ गिनाने लगता है। "हौं तुव नेह पियर भा पानू। पेड़ा हुन्त सोन रास बखानू॥" इसी प्रकार किसी शब्द को लेकर भी अप्रासंगिक तथा अव्यवस्थित उक्तियाँ बाँधी गई हैं।

इतना सब होने पर भी जायसी को अलंकार तथा काव्य-पद्धति का अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा विशेष ज्ञान था। उनकी सभी कल्पनाओं में उनका काव्यत्व स्वयं यह सिद्ध करता है कि वह उदार हृदय प्रेम की पीर को पहचानने वाले हिन्दी के अप्रतिम और अद्वितीय कवि थे।

# मत और सिद्धान्त

कलाकार जब अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है उस समय वह प्रयास करते हुये भी अपने व्यक्तित्व को मूलतः तिरोहित नहीं कर पाता है। स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी भी रूप का आधार लेकर जो कुछ भी वह कहता है उसकी पृष्ठ भूमि भी उसके पासही दिखाई पड़ती है। इसी पृष्ठ-भूमि में आलोचक कलाकार की वैयक्तिक विचार पद्धति, सरकार, मत तथा सिद्धान्त को खोजने की चेष्टा करता है। यदि आलोचक सजग और तत्वान्वेषी हुआ तब तो ठीक अन्यथा उपनिषद् में वर्णित उस सुन्दर कथा के अन्तर्गत मानव दानव और देवता की भांति सन्तुष्ट हो जाता है, जिसमे देव दानव और मानव तीनों प्रजापति के पास उपदेश के लिये पहुँचे थे। प्रजापति ने सबको एक ही अक्षर 'द' बताया। दानव देवता और मानव तीनों ने ही क्रमशः उस 'द' से दमन, दया और दान करने की भावना को ग्रहण किया था।

जायसी मुसलमान थे, सूफ़ी संतों से प्रभावित थे परन्तु आदर्श मानव में जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है उनके प्रति उनकी सर्वोपरि आस्था थी। वे धार्मिक क्षेत्र में भी उदार थे। विचारों की संकीर्णता उनके पास फटकने नहीं पाती थी। उनकी रचनाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों के ही धार्मिक महापुरुषों की चर्चा श्रद्धा के साथ की गई है। सूफ़ी साधना के अन्तर्गत प्रेम पद्धति का जो स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ है उसी का निर्वाह उनके 'पद्मावत' में दृष्टिगत होता है। लोक स्वीकृत आचार विचार को जायसी ने विनयावनत भाव से स्वीकार किया है।

जिस प्रेम का उल्लेख संस्कृत के ग्रन्थों में हुआ है उससे और जायसी वर्णित प्रेम में अन्तर है। प्रभु की कल्पना एक प्रिय के रूप में की गई है। भक्त उसका प्रेमी है परन्तु परमात्मा हमारे प्रेम के निकट नहीं है इसी भावना पर भक्ति का विकास हुआ है। और लोगों ने वत्स और माता के रूप में भी प्रभु की कल्पना की है। बहु विवाह की पद्धति इसी से निकली हुई मालूम होती है। जायसी ने भी इसी आधार पर इसका समर्थन किया है। प्रभु स्वामी है। स्त्रियों की समस्त कामनाओं का केन्द्र प्रभु ही है। पत्नी प्रिय-शीला है। हमारे समस्त काव्य में पत्नी पति की अपेक्षा अधिक उद्वेलित रूप में प्रदर्शित हुई है। फारस देश में सूफ़ी सन्तों ने अनुभव किया कि प्रभु अनन्त सौंदर्य का केन्द्र है। वह अपने सौंदर्य की अभिव्यक्ति करना चाहता है। मानव के अन्दर जहाँ जहाँ सौंदर्य है उसका प्रतिबिम्ब भी स्त्री रूप में प्रस्तुत

किया गया है। सूफ़ी सन्तों ने सौंदर्य की केन्द्रीय सत्ता प्रभु को सौंदर्यमयी, लावण्यमयी रमणी के रूप में देखने की चेष्टा की है। परमात्मा रूपी स्त्री की सुन्दरता की कल्पना भी उन्होंने दृढ़ता के साथ की है। इनके काव्यों में साधक पति के रूप में परमात्मा रूपी स्त्री को प्राप्त करने की चेष्टा में रहता है। और स्त्री भी पति को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहती है। जायसी ने पद्मावत के उत्तरार्ध में पद्मावती को चिन्तित अवस्था में चित्रित किया है।

जायसी प्राचीनता के समर्थक हैं। अनुचित कार्यों की ओर उन्होंने अपनी आँखों की प्रतिभा को मन्द नहीं होने दिया है परन्तु उनका विरोध सीधे सादे शब्दों में किया है। उनके विरोध में अनुचित कार्य करने वालों के प्रति घृणा न होकर कार्य के प्रति उदासीनता स्वीकार करने की भावना को स्थान मिला है। आधुनिक युग में गांधी जी की ही भांति उन्होंने भी **Hate the sin not the sinner** ( पाप से घृणा करो, पापी से नहीं ) के लक्ष्य को अपने सम्मुख रखा है। उपर्युक्त विचारों का समर्थन हमें निम्नलिखित उदाहरण से प्राप्त होता है।

**"राघव पूज जाखिनी, दुइज देखाएसि सांझ।**
**वेदपंथ जेहि नहिं चलहिं, ते भूलहि बन मांझ।**
**झूठ बोल थिर रहे न रांचा। पंडित सोइ वेदमत सांचा।**
**वेद बचन मुख सांच जो कहा, सो जुग जुग अहथिर होई रहा॥"**

× × ×

**"जिन्ह जसमांस भखा परावा, तस तिन्हकर लेई और न खावा।"**

जायसी सूफ़ी सन्त थे यह पिछली पंक्तियों में कई बार जोर देकर कहा जा चुका है अतः यह आवश्यक जान पड़ता है कि सूफ़ी मत के सम्बन्ध में भी थोड़ा विचार कर लिया जाय। मुसलमानों का वह उदार दल जो परमात्मा की परम प्रियतम के रूप में उपासना करता है सूफ़ी कहलाता है। यद्यपि इनका स्पष्ट प्रादुर्भाव मुहम्मद साहेब की मृत्यु के लगभग ३०० वर्षों बाद हुआ परन्तु सर्वप्रथम सूफ़ी मत का आविर्भाव ईस्वी सन् ८०० के पूर्व पैलेस्टाइन में अबुहासिम द्वारा हुआ था। इस्लाम धर्म के मुख्य आधार एकेश्वरवाद को छोड़कर सूफ़ियों ने प्रेम के माध्यम से अनन्त की प्राप्ति का प्रयास किया। प्रेम को सरस धारा के लिये कल्पित मूर्ति की आवश्यकता हुआ करती है अतः इन्होंने चिन्तन और मनन के द्वारा जगत् और जीव को भी ब्रह्म स्वीकार किया। इन लोगों की मान्यताओं में वैष्णव धर्म के अन्तर्गत आने-वाली प्रेम साधना का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत

निराकार खुदा की जो मान्यता है उसको त्यागकर इन लोगों ने भारतीय अद्वैतवाद की स्वीकृत मान्यताओं को स्वीकार किया। वे मानते हैं कि जो कुछ इस संसार में दिखलाई पड़ता है वह प्रभु की सत्ता के आभास के रूप में है। प्रत्येक पदार्थ में प्रभु और प्रभु में सभी पदार्थों का मूल निहित है। हमारी समस्त क्रियाशीलता प्रभु प्रेरित हुआ करती है। आत्मा को उन्होंने पंछी के रूप में माना है। प्राणी का जन्म होते ही वह शरीर रूपी पिंजड़े में पंछी की भाँति कैद हो जाता है और मृत्यु के पश्चात् उसे स्वच्छन्दता का अनुभव होता है। यही कारण है कि सूफी सन्तों ने मृत्यु का बड़े उल्लास के साथ वर्णन किया है। उनका विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करती है। मृत्यु ही मनुष्य को आत्मा द्वारा प्रभु से मिलादेती है। गाँधी जी ने भी परमात्मा की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा है—

"It is not posible to see God face to face unless you crucify the flesh."

( परमात्मा को तब तक रूबरू नहीं देखा जा सकता जबतक शरीर का परित्याग न किया जाय। )

प्रभु से आध्यात्मिक एकता स्थापन में हमें प्रभु के अनुग्रह की आवश्यकता हुआ करती है। प्रभु की कृपा के अभाव में जड़ चेतन सभी की क्रियाशक्ति उर्ध्वगामी न होकर पतनोन्मुखी हो जाती है। प्रभु के अनुग्रह को सूफियों ने 'फ़या जान उल्लाह' अथवा 'फजल्लाह' की संज्ञा दी है। सूफीमतावलम्बी सादा जीवन और शुद्ध आचार विचार को अपनाते हुये भगवत् प्राप्ति हेतु स्मरण चिन्तन को ही जीवन का मूल मंत्र मानते हैं। सूफियों के साधना-सोपानों का वर्णन करते हुये श्री भुवनेश्वर प्रसाद जी मिश्र लिखते हैं "जगत की ओर से मुँह फेर कर भगवान के पथ में चलने की उत्कण्ठा का बीजारोपण जब हृदय में हो जाता है उस समय साधक का नाम तालिब है। इस पथ में वह प्रवृत्त हो जाता है तो उसे 'मुरीद' कहते हैं। किसी गुरु के आदेशानुसार जब वह अपने जीवन को प्रभु प्राप्ति में प्रवाहित कर देता है तब उसका नाम 'सलीक' होता है। सबसे पहले उसे सेवा की दीक्षा मिलती है। सेवा के द्वारा ही प्रेम की प्राप्ति होती है। प्रेम के द्वारा उसे एकाग्रता की प्राप्ति होती है और संसार के सारे राग मोह सदा के लिये जल जाते हैं।" कंचन रूपी अन्तःकरण प्रेमाग्नि में तप्त होकर कुन्दन की नाईं निखर आता है। अन्तःकरण की शुद्धावस्था में ही ज्ञान उदय हुआ करता है, ज्ञान के उज्वल प्रकाश में

ही प्रभु से साक्षात्कार होता है। इसके उपरान्त प्राणी को वस्ल का आना समझने होता है। यह प्राणी की प्रभु प्राप्ति हेतु साधना का अंतिम सोपान है। इसके आगे जाने की न तो उसमें क्षमता ही है और प्रभु की प्राप्ति के पश्चात् न तो वह आगे जाने की चेष्टा ही करता है। हाँ, मृत्यु के पश्चात् की इसी साधना से संबंधित अवस्था जो 'फ़ना' के नाम से विश्रुत है और जिसमें सूफ़ी अपने को सर्वात्मभाव से प्रभु में लय कर देते हैं, का भी उल्लेख विचारकों द्वारा किया गया है।

भारतीय कर्म, उपासना, ज्ञान तथा सिद्धावस्थाओं की भाँति सूफ़ीमतानुयायी भी साधना की चार अवस्थायें मानते हैं :.....शरीअत, तरीकत, हकीकत और मार्फत। ये चारों अवस्थायें क्रमशः कर्म, उपासना, ज्ञान, तथा सिद्धावस्था से साम्य रखती हैं। शरीअत से विधिनिषेध का सम्यक् पालन, तरीकत से शुद्धतापूर्वक भगवान का ध्यान, हकीकत से तत्वदृष्टि सम्पन्नता और मार्फत से कठिन उपवास आदि का अर्थ भी ग्रहण किया जाता है। मन्सूर का 'अनहलक' 'अहं ब्रह्मास्मि' का ही बोधक है। सूफ़ी साधकों ने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही मार्गों में "who best bear his mild yoke, they serve Him best" में संचित भाव से साम्यता रखते हुये सर्वात्म समर्पण को ही प्रधानता दी है। प्रभु के चरणों में सर्वात्म समर्पण करके उसमें लय होना ही साधना की चरम परिणति मानते हैं। 'फना' की अवस्था का वर्णन सूफ़ी सन्त जलालुद्दीन रूमी ने अपनी पुस्तक 'मस्नवी', में निम्नलिखित शब्दों मे किया है। प्रियतम के द्वार को बाहर से किसी ने खटखटाया। भीतर से आवाज आई ...कौन है

मैं हूँ... उत्तर था।

भीतर से आवाज आई;.....इस घर में 'मैं' और 'तुम' दो नहीं रह सकते। द्वार बन्द ही रहे।

प्रेमी निराश होकर लौट गया। वर्ष भर उसने जंगल में एकान्त रहकर तपस्या की, उपवास किया, प्रार्थनायें कीं। वर्ष समाप्त होने पर प्रेमी पुनः लौटा और प्रियतम के द्वार खटखटाये।

कौन है। भीतर से आवाज आयी

तू है, प्रेमी का उत्तर था।

द्वार खुले, प्रेमी और प्रियतम मिले, मिलकर एक हो गये।

इसी सर्वात्म समर्पण की भावना से प्रभावित हो जायसी तथा उनके समसामयिक सभी साहित्य सेवियों द्वारा प्रणीत कथाओं का अन्त नायक और

भारतीय प्रेम शैली का प्रभाव पड़ा है जिसमें जीवात्मा के रूप में नायिका ही ब्रह्म रूपी पुरुष के लिये व्याकुल रहती है।

प्रेम अन्तर्जगत की वस्तु है परन्तु इसकी कल्पना लोकव्यवहार में भी की गई है। Love is blind—वाले स्तर पर न जाने देने के लिये समाज-शास्त्रियों ने कर्तव्य और बुद्धि के द्वारा प्रेम पर नियंत्रण करने का प्रयास किया है। तुलसी के राम और सीता का मर्यादित प्रेम मूलतः भारतीय आदर्श के सदा अनुकूल है। नायिका में सतीत्व एवं दृढ़ प्रेम की अनन्य प्रतिष्ठा करके जायसी और कुतबन आदि सूफी कवियों ने परम्परा से चली आयी भारतीय नारी की आत्मा को वस्तुतः मूर्त किया है। सूफी कवियों ने प्रेम का वर्णन करते समय अवांछित दृश्यों को यथासाध्य बचाया है। अस्तु प्रेममार्गी कवियों द्वारा चित्रित प्रेम वस्तुतः भारतीय परम्परा की आदर्शोन्मुख पृष्ठभूमि के अनुकूल ही हुआ है। प्रतीक पद्धति को छोड़कर अन्य अंगीय प्रवृत्तियों में भारतीयता के दर्शन होते हैं। आत्मा और परमात्मा का एकीकरण 'फना' में होने के कारण कथाओं का अंत विषाद में हुआ है।

तुलना ईर्षा की प्रथम सीढ़ी है। परन्तु युग-प्रवृत्ति, जिसमें तुलनात्मक अध्ययन को महत्त्व प्रदान किया जा रहा है, उसे नहीं स्वीकार करती है वह तुलना के अन्तर्गत विवेचना का आभास पाती है। उपर्युक्त दोनों विचारों को स्वीकार कर विद्वानों द्वारा स्वीकृत सूफी और संत कवियों की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक संकेत ही करना उचित समझता हूँ।

जायसी तथा उनके समकालीन कवियों में कबीर की ही भाँति साधारण रहस्यवाद के स्थल स्पष्ट मिलते हैं।

"जो ब्रह्मण्ड सो पिण्ड है हेरे अंत न काहिं" ऐसा विचार व्यक्त करते हुये जायसी ने जिन जिन स्थानों पर दुर्गम गढ़ की चर्चा की है वहीं प्रायः इस प्रकार के संकेत दे दिये हैं।

"गढ़ तस बाँक जैस तोरि काया।
पुरुष देख वाही की छाया॥"

संत कवियों में भारतीयों के प्रचलित मतवादों की उखाड़ पछाड़ की वृत्ति के संकेत मिलते हैं परन्तु सूफियों ने उन्हीं मतवादों का आदरपूर्वक स्मरण किया है। परम्परा से प्रतिष्ठित हठयोग की समाधि पर कबीर—'साधो सहज समाधि भली का' नारा लगाते है तथा दूसरी ओर 'आँख न मूदों' आदि कह कर हठयोग का निषेध करते हैं। परन्तु सूफियों में इस प्रकार की चर्चा

कहीं नहीं मिलती। आचार्य शुक्ल जी ने सूफी और संत कवियों का उल्लेख करते हुये लिखा है :—

"कबीर तथा अन्य संतों ने अपनी झाड़ फटकार तथा खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति से हिन्दू मुसलमानों के कट्टर भेदों को दूर करने का जो प्रयत्न किया वह प्रायः लोगों को चिढ़ाने वाला ही हुआ, हृदय का स्पर्श करने वाला नहीं। मनुष्य और मनुष्य के बीच रागात्मक संबंध की अभिव्यक्ति सांगोपांग रूप से इन संत कवियों द्वारा नहीं हो सकी है। कुतबन जायसी आदि की प्रेम कहानियों ने प्रेम के शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए उन सामान्य जीवन की दशाओं को प्रत्यक्ष कर दिया जिनका मनुष्य के हृदय पर एकसा प्रभाव दिखाई पड़ता है। कबीर आदि ने भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास मात्र दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता अभी शेष थी। यह जायसी आदि कवियों के द्वारा पूर्ण हो सकी।"

कबीर तथा उनके समकालीन कवियों में रहस्यानुभूति की जो कुछ भी अभिव्यक्ति हुई उससे निराकार ब्रह्म की सत्ता का संकेत प्राप्त होता है। फुटकर पदों में उसका सविस्तार वर्णन सम्भव नहीं था अतः कुछेक सम्बन्धों की सम्भावना देते हुये भावों की अभिव्यक्ति करना उनका लक्ष्य रहा है और इसी कारण से संतकाव्यों में निराकार ब्रह्म का विस्तृत विवरण जायसी, कुतबन आदि की प्रबन्ध-रचनाओं की अपेक्षा कम प्राप्त होता है। कबीर आदि संतों का रहस्यवाद प्रमुख रूपसे दार्शनिक ही रहा है उसमें सूफी कवियों की अपेक्षा माधुर्य भावना की परम्परा का अभाव खटकता है। वेदान्त के विभिन्न वादों तथा अन्य दार्शनिक शैलियों का अनुसरण करते हुये कबीर आदि ने रहस्योद्गार व्यक्त किये हैं। डा० श्यामसुन्दर दास जी ने भी इस सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया है कि—'कविता की दृष्टि से कबीर का रहस्यवाद ओज और प्रकाशपूर्ण और सूफियों का माधुर्य और रसपूर्ण है।"

कबीर निर्गुणोपासक थे, महात्मा थे। उनके द्वारा यद्यपि साहित्य में समाजसुधार तथा रूढ़ियों के विरोध का समाजोपयोगी तत्व समाविष्ट हुआ परन्तु उनकी भाषा में एक रूपता के दर्शन नहीं होते हैं। यही कारण है कि आलोचक संत कवियों की अपेक्षा सूफी कवियों की भाषा अधिक परिमार्जित तथा माधुर्यरस से ओतप्रोत मानते हैं। उनका ऐसा मत है कि सूफी कवियों की अवधी आदर्श मौलिक अवधी है।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि संत-साहित्य सूफी-साहित्य के समक्ष नितान्त हेय हैं। संत कवि और सूफी कवियों की परिस्थितियां भिन्न

थी। उस युग में उसी प्रकार के बचनामृत जिससे कटुता दूर हो और धर्म के नाम पर पापाचार करने वालों को मुंहतोड़ उत्तर भी प्राप्त होता रहे की आवश्यकता थी। दूसरी बात जो तुलनात्मक विवेचन करते समय अवश्य ध्यान रखना चाहिये वह है कबीर तथा उनके समसामयिक संतकवियों की निरक्षरता। वे तत्वान्वेषी थे। कथित भाषा पर जो अधिकार संत कवियों को है वह आज तक किसी भी कवि द्वारा अपनाया ही नहीं जा सका है। कबीर और जायसी के युग की परिस्थितियां भिन्न हैं जिनके कारण अन्तर उपस्थित होना अनिवार्य है। अपने अपने युग में कबीर और जायसी ने जो कुछ लिखा वह समाज और साहित्य दोनों के लिये उपादेय रहा है। सूफियों की अवधी में तुलसी की सी कोमलता और भावव्यंजना का रूप प्राप्त न होने पर उनके साहित्य का प्रभाव क्षीण सा हो गया। जायसी आदि सूफी कवियों का जितना प्रभाव बुद्धिजीवियों पर पड़ता है उतना साधारण मानव पर नहीं जब तक वह उसमें रस लेने की इच्छा से उसका रसास्वादन न करें। यही कारण है कि कबीर के पदों को हम प्रायः रेडियो तथा रेलयात्रा के समय सूर लोगों से सुना करते है। उनका सूफी कवियों की अपेक्षा व्यापक प्रभाव है।

वीर काल में वीरोल्लास मय कविता का सृजन हुआ और संत कवियों ने प्रेम और वैराग्य को साहित्यिक विषय के रूप में प्रस्तुत किया परन्तु प्रेमाख्यानक कवियों ने रति, करुणा, उत्साह आदि की विस्तृत भूमिपर काव्य रचना की। काव्य की अपेक्षाकृत भावभूमि को प्रस्तुत करने का कार्य सम्पन्न हुआ। मुक्तक गीतों में समाज की सांगोपांग भावना और मानव जीवन के सूक्ष्म मानसिक चित्र सम्पूर्ण पृष्ठभूमि सहित चित्रित नहीं हो सकते थे। प्रेमाख्यानक कवियों ने अपने प्रबन्ध काव्यों द्वारा मानवीय भावों का सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की। सूफी कवियों में से अनेक ने काव्य के द्वारा अपने व्यक्तित्व को अमर बनाने की अभिलाषा व्यक्त की है परन्तु संत कवि आत्मज्ञानी थे, तत्वान्वेषी थे अतः उनके काव्य से जनकल्याण कारिणी भावना का प्रस्फुटन जिस रूप में हुआ है, वह स्तुत्य है।

## जायसी का रहस्यवाद

रहस्यवाद की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में कबीर की रहस्यानुभूति नामक अध्याय के अंतर्गत सूक्ष्म रूप में विचार किया जा चुका है। उन्हीं बातों को दुहराकर पुस्तक का आकार बढ़ाना उपयुक्त नहीं समझता हूँ। अतएव यहाँ पर संक्षेप में दो एक बातें कहने के पश्चात् जायसी के रहस्यवाद पर विचार करना ही उचित मानता हूँ।

मनुष्य सौंदर्यप्रिय प्राणी है। वह प्रकृति में अपने हृदय की छाया का दर्शन करता है और अपने हृदय की भावनाओं का सादृश्य प्रकृति में भी ढूंढ़ता है। 'हिन्दी साहित्य और साहित्यकार' में यशस्वी लेखक श्री सुधाकर जी ने रहस्यवाद का शब्दात्मक रूप उपस्थित करते हुये लिखा है :—"प्रकृति जिस अमर सौंदर्य की छायामात्र है, उसके प्राणतत्व के रहस्य का भी उद्घाटन कवि करने लगे तथा अपने हृदय की भावनाओं में उस रहस्य-सौन्दर्य का तादात्म्य स्थापित करने लगे। इसी संकल्पनात्मक अनुभूति की काव्यमयी अभिव्यक्ति को रहस्यवाद की संज्ञा दी गयी।"

भिन्न-भिन्न युगों में रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ भी, यही कारण है कि परिवर्तित रूप लिये उपस्थित हुई हैं। कबीर जायसी और आधुनिक रहस्यवाद की प्रवृत्तियों में एकरूपता के दर्शन नहीं होते हैं।

सूफी कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति ईश्वरोन्मुख है। प्रकृति में ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करने के साथ साथ वे उसमें समस्त सृष्टि के सौन्दर्य स्रष्टा की छाया भी देखते हैं।

**"कीन्हेसि सात समुन्द अपारा। कीन्हेसि मेरू, खिखिंद पहारा।**
**कीन्हेसि नदीनार, औ झरना। कीन्हेसि मगर मच्छ बहु बरना॥"**

प्रकृति में—प्रियतम के रूप में ईश्वरत्व का दर्शन करने की क्षमता इन सूफी संतों में तीव्रतम रूप से पायी जाती है। वे उसमें अपने प्रियतम की मूक प्रतिबिम्बित छाया मात्र न देखकर अपनी रागात्मक वृत्ति का प्रतिस्पन्दित स्वर भी सुनते हैं। जायसी के 'पद्मावत्' में लौकिक कहानी का आधार लेकर ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यंजना हुई है और इस ईश्वरोन्मुख प्रेम को सजीव और साकार रूप देने के लिये मानव के मनोभावों का आश्रय ग्रहण किया गया है।

जायसी की रहस्यानुभूति के दो रूप हैं। प्रथम में तो ईश्वर निराकार है, निर्गुण है अतः अवर्णनीय है आदि बातों की चर्चा मिलती है। जैसेः—

'अलख अरूप अवरन सो कर्ता। वह सब सों, सब ओहि सो बर्ता।
परगट गुपुत सो सरब बिआपी। धरमी चीन्ह, न चीन्हें पापी॥
ना ओहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटुंब न कोई संग नाता।
जना न काहु, न कोइ ओहि जना। जहं लगि सब ताकर सिरजना॥"

अथवा

"मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्
यत्कृपा तमहंवन्दे परमानन्द माधवम्"

की भाँति वे भी ईश्वर के अव्यक्त रूप की प्रतिष्ठा करते हैं।

"जीउ नाहिं, पै जिये गुसाईं। करनाहीं, पै करे सबाई॥
जीभ नाहिं पै सब बिछु बोला। तन नाहीं सब ठाहर डोला॥
नयन नाहिं, पै सब किछु देखा। कौन भाँति अस जाइ विसेखा॥
है नाहीं कोई ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा॥
ना ओहि ठाऊँ, न ओहि बिनु ठाऊँ। रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ॥"

जायसी की रहस्यानुभूति का प्रथम रूप निर्गुण संत मत की पृष्ठभूमि पर ही विकसित हुआ है। उसमें व्यापक दृष्टिकोण के साथ रहस्यमयी सत्ता का उद्घाटन करने की चेष्टा की गयी है। मधुरता और रमणीयता से ओतप्रोत भावव्यंजना के द्वारा अमूर्त सत्ता का जो वर्णन जायसी ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है :—

"बहुत जोति जोति ओहि भई।
रवि, ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ, मानिक मोती।
जहँ तहँ विहसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटक जोति परगसी।
नयन जो देखा कवंल भा निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।"

जायसी ने प्रकृति को आधार बनाकर, रहस्यवाद के अन्तर्गत आने वाली जिस कोटि की भावाभिव्यक्ति की है उसका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। इस स्थल पर आचार्य शुक्ल जी के विचार जो इस सम्बन्ध में समीचीन हैं उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ।

"प्रकृति के बीच दिखाई देनेवाली सारी दीप्ति उसी से है, इस बात का आभास पद्मावती के प्रति रत्नसेन के ये वाक्य दे रहे हैं :—

"अनु धनि! तू निसिअर निसि माहाँ। हौ दिनकर जेहि के तू छाँहा।
चाँदहि कहा जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा॥"

रहस्य की खोज में जायसी दत्तचित्त से दीख पड़ते हैं। सभी विधि विधानों

को नमन करती हुई उनकी तत्वान्वेषी वृत्ति प्रकृति में मानवी भावनाओं का प्रस्फुटन करती दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ—

"पिय हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाव, कहौं केहि रोई।"

परन्तु प्रभु का सामीप्य प्राप्त होने पर जिस आनन्द की प्राप्ति होती है उसकी व्यंजना जायसी ने निम्नलिखित पंक्तियों में किस सुन्दर ढंग से की है इसका अनुभव पाठक स्वयमेव करें।

"देखि मानसुर रूप सोहावा। हिय-हुलास पुरइनि होइ छावा।
गा अंधियार रैन-मसि छूटी। भा भिनसार किरिन रवि फूटी॥
कँवल बिगस तरु विहँसी देही। भँवर दसन होइ के रस लेहीं॥"

उस जगत नियन्ता का सामीप्य प्राप्त होने पर मानस रूपी मानसरोवर में उल्लास रूपी पुरइनि (जिसमें कमल खिलते हैं) चारों ओर फैल गयी है। साक्षात्कार से अंधकार रूपी अज्ञान नष्ट हो गया है। ज्ञानरूपी प्रभाव में मानस का कमल प्रफुल्लित हो उठा है और उन पर भौरे दिखाई दे रहे हैं। अंतः और बाह्य जगत का सामंजस्य जिस ढंग से उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्त हुआ है वह अनुपमेय है।

आचार्य शुक्ल जी ने जायसी के रहस्यवाद को अद्वैतवादी रहस्यवाद के अन्तर्गत माना है। इसके समर्थन में उन्होंने बड़ी विशद व्याख्या करते हुये जायसी के पद्मावत से उद्धरण उद्धृत किये हैं। अगली पंक्तियों में जायसी के अद्वैतवादी रहस्यवाद से सम्बन्धित उनके विचार उन्हीं के शब्दों में रखने की चेष्टा कर रहा हूँ :—

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर, दोनों एक थे, बीच बीच में न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है :—

"धरती सरग मिले हुत दोऊ। केह निनार कै दीन्ह बिछोऊ॥

जो इस पृथ्वी और स्वर्ग के वियोग-तत्व को समझेगा और उक्त वियोग में पूर्ण रूप से सम्मिलित होगा उसी का वियोग सारी दृष्टि में इस प्रकार फैला दिखाई देगा :—

सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता।
भा बसंत रातो बनसपतीं। औ राते सब जोगी जती॥
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पंखि पखेरू।
राती सतो, अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया॥

सायं प्रभात न जाने कितने लोग मेघ खंडों को रक्त वर्ण होते देखते हैं पर किस अनुराग से वे लाल हैं इसे जायसी ऐसे रहस्यदर्शी भावुक ही समझते हैं।

प्रकृति के सारे महाभूत उस अमरधाम तक पहुँचने का बराबर प्रयत्न करते रहते हैं पर साधना पूरी हुए बिना पहुँचना असम्भव है—

"धाइ जो बाजा के मन साधा। मारा चक्र, भएउ दुइ आधा॥
चांद सुरूज औ नखत तरांई। तेहि उर अन्तरिख फिरहि सबाई॥
पवन जाइ तहँ पहुँचे चहा। मारा तेस लोटि भुइं रहा।
अगिनि उठी जरि बुझा निआना। धुआँ उठा उठि बीच बिलाना।
पानि उठा, उठि जाइ न छुआ। बहुरा रोइ आई मुँह चूआ।"

जायसी की रहस्यानुभूति का प्रथम रूप जो अपने में पूर्ण है, लौकिक कथा के माध्यम से ईश्वरोन्मुख रहस्यों का अवगुंठन खोलने में सहायक हुआ है।

जायसी विवेकवान् प्राणी थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती सन्तों की रहस्यमयी अभिव्यक्ति, जिसमें निर्गुण निराकार एवं अव्यक्त के रहस्यों की चर्चा की गई थी, का प्रभाव भी देखा था। संतों की रहस्यानुभूति से जन साधारण आकर्षित नहीं हुआ था वह संकेत रूप में दार्शनिक दृष्ठभूमि पर टिका होने के कारण पाठकों के आभ्यंतर को झंकृत करने में अक्षम सा हो रहा था। अतः प्रेम का सम्यक् निर्वाह लिये हुये कथानक की सृष्टि कर उन्होंने रहस्यवाद को जनता जनार्दन की रुचि स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया।

जायसी की रहस्यानुभूति का दूसरा रूप, जिसमें लोक रंजक रूप का भी निर्वाह हुआ है अत्यन्त सरस है। उन्होंने पद्मावत के अन्त में उसकी लौकिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त रहस्यमयी पृष्ठभूमि को ग्रहण करने के लिये अनुरोध भी किया है। पाठक जब यह पढ़ता है :—

"तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुद्धि पदमिनि चीन्हा।
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनुगुरू जगत को निरगुन पावा।"
नागमती यह दुनिया-धन्धा। बाँधा सोइ न एहि चित बँधा।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।"

और अपनी बुद्धि के आधार से उपर्युक्त चौपाइयों में वर्णीत तथ्य को कथानक के साथ बैठाने की चेष्टा करता है उस समय कथानक का दोहरे रूप में सांगोपांग निर्वाह देखकर वह आश्चर्य में पड़ जाता है। जायसी ने प्रेमोन्मुख कथा के द्वारा आन्तरिक जगत की पृष्ठभूमि का जो सम्यक चित्र उपस्थित किया वह कुतबन और मंझन की रचनाओं में भी हो चुका था; परन्तु जो स्वरूप और प्राण प्रतिष्ठा जायसी के पद्मावत में व्यक्त हुई है वह उनके पूर्व-

वर्ती तथा बाद के कवियों में ढूँढने पर भी प्राप्त नहीं होती है। जायसी ने पद्मावत की कथा को रूपक मात्र ही स्वीकार करने का निवेदन किया है। उनके सभी वर्णन प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर संकेत एवं उसका रहस्योद्घाटन करते हुये चलते हैं। उन्होंने लौकिक रूप लिये हुये प्रेमी के कष्टों और त्याग आदि का वर्णन इस ढङ्ग से किया है, जिससे साधक की उर्ध्वगामी यात्रा के समय का विधिवत चित्र उपस्थित हो जाता है। रतन सेन और पद्मावती के माध्यम से साधक और ब्रह्म के मिलन और विरह के उद्भावना जनित दृश्यों का जो शब्द-चित्र जायसी ने दिया है वह हृदयस्पर्शी होने के साथ साथ प्रभावोत्पादक भी है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी जायसी के रहस्यवाद को ही वास्तविक रहस्यवाद मानते हैं। जायसी की रहस्यानुभूति प्रारम्भ में अन्तर्मुखी होने के पश्चात् बर्हिमुखी रूप स्वीकार करती हुई प्रतिलक्षित होती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के पश्चात् यदि स्वीकार किया जाय कि जायसी की रहस्यानुभूति अन्तर को आत्मसात कर पाठक की रागात्मक वृत्ति को झंकृत करने में सफल हुई है तो अनुपयुक्त नहीं होगा।

## प्रबन्ध-काव्य के रूप में पद्मावत

प्रबन्ध-काव्य के रूप में पद्मावत पर विचार करने के पूर्व प्रबन्धकाव्य की मान्यताओं पर दृष्टिपात करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मान्यताओं के अभाव में विचार तन्तु नियंत्रित न होकर उच्छृंखलता धारण करने लगते हैं और ऐसे वातावरण में जो कुछ भी कहा जाता है वह विषय की परिधि के बाहर भीतर आँख मिचौनी सी क्रिया की सृष्टि करता है।

प्रबन्ध-काव्य में मानव जीवन के विभिन्न परन्तु सभी महत्वपूर्ण स्थलों का चित्रण हुआ करता है। कथा-क्रम का विकास शनैः शनैः होता चलता है। आलोचकों ने विकास-क्रम के दो रूप स्वीकार किये हैं। पहले रूप में तो कथाकार कथाक्रम को स्वाभाविक गति पर छोड़कर स्थायी भावों की व्यंजना को सवांरता हुआ चलता है। स्वाभाविक गति से तात्पर्य यह है तत्कालीन समाज में यदि कथा के अन्तर्गत आये हुये चरित्रों की उद्भावना होती तो समाज के थपेड़े तथा युग परिस्थितियाँ उसे किस ओर ले जाती हैं। वस्तुतः

हम इसे यथार्थ का पर्यायवाची रूप तो स्वीकार नहीं कर सकते हैं परन्तु इस प्रकार की स्वाभाविक गति में यथार्थता के आंशिक दर्शन अवश्य प्राप्त होते हैं। विकासक्रम का दूसरा रूप वह है जिसमें कथाकार अच्छे और बुरे कर्मों के फल की नियतप्ति कराता हुआ आदर्शोन्मुख गुणों से युक्त पुरुष की अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय दिखाता है। इस प्रकार के कथाक्रम का विकास पूर्व नियोजित घेरे के अन्दर होता है जिसमें कथाकार का लक्ष्य मुख्यतः इतिवृत्तात्मकता का सम्बल ग्रहण कर मंजिल पर पहुँचना होता है। जीवन में अनेक प्रकार के रंगों का समावेश निहित रहता है यदि कथाकार उन आकर्षक रंगों का अवगाहन करने के पश्चात उनकी अभिव्यक्ति नहीं करता है तो वह सफल कलाकार नहीं कहा जायगा।

जायसी के पद्मावत में रत्नसेन और पद्मावती के जीवन की उन समस्त प्रासंगिक घटनाओं का वर्णन हुआ है जिससे कथाक्रम को गति प्राप्त होती है। जायसी के पद्मावत का विकास स्वाभाविक गति पर हुआ है अन्यथा "राघव दूत सोई सैतानू," का बखान करने वाला उसके दुष्कर्मों जनित अंत का भी वर्णन अवश्य करता। पात्रों के कर्मों का शुभाशुभ परिणाम दिखाना जायसी का उद्देश्य कभी भी नहीं रहा। संसार की गति को उन्होंने जिस रूप में देखा था उसी रूप में अवतारणा उन्होंने पद्मावत के अन्तर्गत की है। एक बात जो और ध्यान देने की है वह है उनका कथानक। यह हम पहले ही कह आये हैं कि उनका कथानक मिश्रित कथानक है। उसमें कल्पना और ऐतिहासिकता दोनों का समन्वय निहित है। अतः कथाक्रम का विकास यद्यपि स्वाभाविक गति से हुआ है परन्तु उसका मार्ग इतिहास द्वारा पद्मावत के अनेक वर्षों पूर्व ही बन चुका था। ऐतिहासिकता के बन्धन को स्वीकार कर कवि-अपेक्षित-कल्पना का समन्वय करते हुये जायसी ने कथा का विकास-स्वाभाविक गति पर ही किया है और यह कथाकार की क्षमता है कि उपर्युक्त तीनों का संगम प्रेम की परिपुष्टि में सहायक होता है। जायसी का वर्णन इतिहास का बन्धन स्वीकार करता है परन्तु उनके मन में सद्गुणों के प्रति आस्था थी और वे उदार थे अतः अपनी वैयक्तिक रुचि को वे कथा के अन्तर्गत तिरोहित नहीं कर सके हैं। उनके वर्णन में सद्गुणों की प्रशंसा के जो स्थल आये हैं उनमें उनकी आत्मा का स्वर प्रतिध्वनित हो उठा है।

प्रबन्ध काव्य में कथा-क्रम सुसंयत और प्रवाहपूर्ण होना चाहिये। पाठक को पढ़ते समय यह अनुभव न होने पावे कि कथा-क्रम टूटा हुआ तथा अस्वाभाविक है अन्यथा कथा का सौन्दर्य कृति के महत्व को भी साथ में लेकर

समाप्त हो जाता है। जायसी ने पद्मावत में इस ओर विशेष ध्यान दिया है। ५७ सर्गों में कथा का विस्तार है। अनेक पात्र हैं। मुख्य पात्रों एवं घटनाओं की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक है। अपनी वैयक्तिक रुचि तथा सिद्धान्तों का समावेश भी करने की लालसा है। सांगोपांग रूपक का निर्वाह भी करना है। और यह सब कुछ जायसी द्वारा जायसी के पद्मावत में हुआ है। पद्मावत को पढ़ने पर ऐसा मालूम होता है कि जिस रूप में जायसी का पद्मावत है वह पुनरुक्ति के दोष को ध्यान से हटा देने पर सर्वांग सुन्दर है। प्रबन्ध काव्य में एकरसता का ढूँढना अनौचित्यपूर्ण है क्योंकि उसमें जीवन के विभिन्न अंगों का चित्रण हुआ करता है। जो स्थल मर्मस्पर्शी होते हैं अथवा जिनमें लेखक की वैयक्तिक अनुभूति के साथ कुछ विशेष राग हुआ करता है वे अधिक मुखरित हो उठते हैं। अतः प्रबन्ध काव्य का अपेक्षित गुण, जिसमें इतिवृत्तात्मकता के साथ रसों का परिपाक भी होना आवश्यक है, को दृष्टि में रखते हुये जब हम पद्मावत का अवलोकन करते हैं तो हमें आत्मसन्तोष होता है और हम यह अनुभव करते हैं कि कथाकार ने इस दृष्टिकोण का भी समुचित आदर किया है। कथानक में इतिवृत्तात्मकता है परन्तु वह गौण है। भावों की व्यञ्जना, जानकारी का बाहुल्य आदि में कथा स्वयं गतिवान हो उठी है। उदाहरणार्थः—

चितउरगढ़ का एक बनिजारा। सिंघल दीप चला बैपारा।
बाम्हन हुत एक निपट भिखारी। सो पुनि चला चलत बैपारी।
ऋन काहू सन लीन्हेसि काढ़ी। मकु तहं गए होइ किछु बाढ़ी।
मारग कठिन बहुत दुःख भएऊ। लांघि समुद्र दीप ओहि गएऊ।
देखि हाट किछु सूझ न ओरा। सबै बहुत, किछु दीख न थोरा।
पै सुठि ऊँच बनिज तहँ केरा। धनी पाव निधनी मुख हेरा।
लाख करोरिन्ह बस्तु बिकाई। सहसन केरि न कोऊ ओनाई।

उपर्युक्त चौपाइयों का प्रारम्भ चित्तौरगढ़ के एक व्यापारी के साथ एक दरिद्र ब्राह्मण का उधार लेकर व्यापार की इच्छा से सिंघल द्वीप जाने से होता है। सात चौपाइयों में चित्तउरगढ़ के व्यापारियों का रुपये की व्यवस्था के पश्चात् मार्ग जनित कष्टों को उठाकर सिंघल द्वीप जाने और बाजार वर्णन तथा बाजार में क्रय-विक्रय हेतु उपस्थित होने की क्रिया का वर्णन हुआ है। वर्णन में गति और भावों का अवगुंठन शनैः शनैः खुलता हुआ सा मालूम होता है। भावों की अभिव्यंजना परिस्थिति का चित्रण उपस्थित करने में

सहायक हुई है यही कारण है कि पाठक कवि की कथा के साथ साथ चलने की लालसा को एकाएक नहीं छोड़ पाता है।

आचार्य शुक्ल जी ने प्रबन्ध काव्य की रसात्मकता की चर्चा बड़े मार्मिक शब्दों में की है। स्वाभाविकता की रक्षाहेतु उनके विचार उन्हीं के शब्दों में उपस्थित करना उचित समझता हूँ :—

"जिनके प्रभाव से सारी कथा में रसात्मकता आ जाती है वे मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थल हैं जो कथा प्रवाह के बीच बीच में आते रहते हैं। यह समझिए कि काव्य में कथा-वस्तु की गति इन्हीं स्थलों तक पहुँचने के लिए होती है। पद्मावत में ऐसे स्थल बहुत से है—जैसे, मायके में कुमारियों की स्वच्छन्द क्रीड़ा, रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक, प्रेममार्ग के कष्ट, रत्नसेन को सूली की व्यवस्था, उस दंड के संवाद से विप्रलंभ दशा में पद्मावती की करुण सहानुभूति, रत्नसेन और पद्मावती का संयोग, सिंहल से लौटते समय की सामुद्रिक घटना से दोनों की विह्वल स्थिति, नागमती की विरह दशा और वियोग संदेश, उस संदेश को पाकर रत्नसेन की स्वाभाविक प्रणय-स्मृति, अलाउद्दीन के संदेसे पर रत्नसेन का गौरवपूर्ण रोष और युद्धोत्साह, गोरा-बादल की स्वामिभक्ति और क्षात्रतेज से भरी प्रतिज्ञा, अपनी सजलनेत्रा और भोली भाली नवागता वधू की ओर पीठ फेर बादल का युद्ध के लिये प्रस्थान, देवपाल की दूती के आने पर पद्मावती द्वारा सतीत्व-गौरव की अपूर्व व्यंजना, पद्मावती और नागमती का उत्साहपूर्ण सहगमन, चित्तौर की दशा इत्यादि। इसमें से पाँच स्थल तो बहुत ही अगाध और गम्भीर हैं। नागमती वियोग, गोरा बादल प्रतिज्ञा, कुँअर बादल का घर से निकल कर युद्ध के लिये प्रस्थान, दूती के निकट पद्मावती द्वारा सतीत्वगौरव की व्यंजना और सहगमन। ये पाँचों प्रसंग ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में हैं। पूर्वार्द्ध में तो प्रेम ही प्रेम है, मानवजीवन और उदात्त वृत्तियों का जो कुछ भी समावेश है वह उत्तरार्द्ध में है।" आचार्य जी ने तत्वान्वेषी वृत्ति के आधार पर मार्मिक स्थलों की जो सूची प्रस्तुत की है उससे यह स्पष्ट है कि जायसी ने सबके साथ न्याय कर अद्भुत प्रबन्धपटुता को प्रदर्शित किया है।

प्रबन्ध काव्य का एक और विशिष्ट गुण है संबंध निर्वाह। कथा-क्रम कहीं पर खंडित नहीं है। एक प्रसंग अपने में पूर्ण होते हुये भी दूसरे प्रसंग के लिये आधार का कार्य देता है। प्रसंगों की पूर्णता को स्वीकार करते हुये शुक्ल जी ने लिखा है कि "जायसी में विराम आवश्य है जो कहीं कहीं अनावश्यक है पर विवरण का लोभ नहीं है जिससे प्रवाह खंडित होता है।"

सम्बन्ध निर्वाह पर विचार करते समय हमें मुख्यतया यह देखना चाहिये कि आधिकारिक कथा का प्रासंगिक कथाओं के साथ जो सामंजस्य हुआ है वह कथा के प्रवाह में बाधा तो नहीं उपस्थित करता है अथवा उसका सामंजस्य न होने से भी आधिकारिक कथा का विकास स्वाभाविक गति से हो सकता था अथवा नहीं। उपर्युक्त दृष्टिकोण से जब हम पद्मावत के पृष्ठों को खोलते हैं तो हमें निराश नहीं होना पड़ता है। हीरामन तोता, तोता खरीदने वाला ब्राह्मण, राघव-चेतन, बादल की नवविवाहिता वधू, तथा दूतियाँ आदि अनेक प्रासंगिक कथावृत्त हैं जिनसे मूल कथा की सरसता में अभिवृद्धि ही होती है। इनके कारण मूल कथा के पात्रों पर जो झलक पड़ती है उससे उनके व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट होते हैं।

जायसी के पूर्व मूल कथा में प्रासंगिक कथाओं का समावेश नहीं के बराबर था। कुतबन और मंझनने जो ग्रंथ रचे थे उनमें एक ही कथा, "जिसे आधिकारिक कथा भी कह सकते हैं", का ही समावेश हुआ है। जायसी ने पद्मावत में प्रेम की पीर का वर्णन किया है और उस वर्णन में उन्होंने जो कुशलता प्रबन्ध के रूप में प्रदर्शित की है वह अनुपमेय है।

अन्त में शुक्ल जी का मत जो निर्णयात्मक होते हुये समीचीन भी है उद्धृत कर रहा हूँ।

"जो कुछ हो, काव्य का जैसा घटना चक्र चाहिये पद्मावत का वैसा ही है। चाहे इसमें अधिक जीवन दशाओं को अंतर्भूत करने वाला विस्तार और व्यापकत्व न हो, पर इसका स्वरूप बहुत ठीक है।"

## पद्मावत की प्रेम-पद्धति

पद्मावत की सम्पूर्ण कथा पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका कथानक प्रेम को सुरम्य एवं आकर्षक क्यारियों के बीच अंकुरित होता है। पद्मावत में राजा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम की चर्चा की गई है। इसी प्रेम के आविर्भाव, विकास और चरम गति तीनों में ही कथा का प्रारम्भ, विकास और अन्त होता है। संस्कृत साहित्य में प्रेम की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं। इन प्रेम-पद्धतियों का वर्गीकरण कई दृष्टिकोणों से किया

जा सकता है। दाम्पत्य दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रेम की चार पद्धतियाँ साहित्य विधायकों द्वारा अपनाई गई है।

१. प्रथम प्रकार के प्रेम में नायक और नायिका का प्रेमोत्कर्ष विवाह संबन्ध हो जाने पर हुआ करता है।

२. द्वितीय प्रकार का प्रेम वह है जिसका उदय विवाह के पूर्व सार्वजनिक स्थलों जैसे—उपवन, नदी तट, और देवालय आदि में साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् होता है और विवाह हो जाने पर उस प्रेम का शान्त स्निग्ध रूप ही रह जाता है।

३. तृतीय प्रकार का प्रेम, प्रेम न होकर विलासोन्मुख क्रियाशीलता को प्रकट करता है। इसका परिपाक राजाओं के अन्तःपुर में होनेवाले रागरंग और भोगविलास के बीच दिखाया जाता है।

४. चतुर्थ प्रकार का प्रेम वह है जो गुण-श्रवण तथा चित्र-दर्शन के पश्चात् उदित होता है।

उपर्युक्त चारों प्रकार के प्रेम का वर्णन संस्कृत और हिन्दी साहित्य में मिलता है। साहित्यकारों ने दाम्पत्य प्रेम की चर्चा करते समय नायिका को नायक की अपेक्षा अधिक उद्वेलित रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि विरहावस्था में स्त्रियों की मनोभावना सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में व्यक्त की गई हैं।

पद्मावत के कथानक को ध्यान में रखते हुये जब हम उपर्युक्त वर्गीकरण में उसका स्थान ढूँढने की चेष्टा करते हैं तो उसे चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत पाते हैं। (राजा रत्नसेन हीरामन तोते से पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुन कर आकर्षित होता है और पद्मावती भी हीरामन तोते के माध्यम से राजा रत्नसेन के गुणों तथा उसके आकर्षण जनित प्रेम की विह्वलता को सुनकर आकर्षित होती है। पद्मावत में फारसी ढंग पर प्रेम का अभ्युदय हुआ है। भारतीय पद्धति के विपरीत फारसी कहानियों में नायक नायिका की अपेक्षा अधिक व्याकुल चित्रित हुआ है।) शीरी फरहाद, लैला मजनूं आदि जितनी भी प्रेम कथायें हैं सबमें नायक नायिका की प्राप्ति के लिये जमीन आसमान मिलाने का प्रयत्न करते हुये दिखाई देते हैं। जायसी ने प्रारम्भ तो फारसी ढंग से ही किया परन्तु बाद में पद्मावती के मन में राजा रत्नसेन के प्रति आकर्षण का प्रादुर्भाव करा कर Action & reaction की मान्यता को स्वीकार किया है।

कथाकार ने फारसी मसनवियों द्वारा वर्णित प्रेम, जिसमें लोक-पक्ष का अभाव रहता है, को न अपनाकर भारतीय प्रेम-पद्धति को अपनाया है। उन्होंने भारतीय प्रेम-पद्धति के अन्तर्गत लोक रंजक एवं व्यौहारात्मक पक्ष की चर्चा की है। रत्ना रत्नसेन पद्मावती का रूप-सौन्दर्य सुन कर उसके लिये व्याकुल हो उठता है और जोगी होकर उसको पाने के लिये चल देता है। आचार्य शुक्ल जी इस क्रिया को लोभ के अन्तर्गत मानते हैं वे इसमें प्रेम का आभास नहीं देखते। पद्मावती की सौन्दर्य प्रशंसा सुनने के पश्चात् रत्नसेन के चित्तौड़ छोड़ने में यद्यपि लोभ की ही वृत्ति रही है फिर भी उसमें प्रेम का अंकुर छिपा है यह हमें नहीं भूलना चाहिये।

शुक्ल जी ने आगे चलकर अपनी बात का परिस्थिति के आधार पर स्वयं खंडन किया है। वे लिखते है "राजा रत्नसेन तोते के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन सुन उसके लिये जोगी होकर निकल पड़ा और अलाउद्दीन ने राघव चेतन के मुँह से वैसा ही वर्णन सुन उसके लिये चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। क्योंकि एक प्रेमी के रूप में दिखाई पड़ता है और दूसरा रूप-लोभी लंपट के रूप में ? अलाउद्दीन के विपक्ष में दो बातें ठहरती हैं:—( १ ) पद्मावती का दूसरे की विवाहिता स्त्री होना और ( २ ) अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना। ये दोनों ही प्रकार के अनौचित्य अलाउद्दीन की चाह को प्रेम का स्वरूप प्राप्त नहीं होने देते। यदि इस अनौचित्य का विचार छोड़ दें तो रूप वर्णन सुनते ही तत्काल दोनों के हृदय में जो चाह उत्पन्न हुई वह एक दूसरे से भिन्न नहीं जान पड़ती।"

राजा रत्नसेन की दो पत्नियाँ हैं। दोनों के ही प्रेम का चित्रण उनकी स्वाभाविक परिस्थितियों के अन्तर्गत ही हुआ है। नागमती विवाहित जीवन के सुखानुभव कर अपने को गौरवान्वित मानती है। उसकी प्रेम धारा में हमें दो मोड़ दिखाई पड़ते हैं। वैवाहिक जीवन के अन्तर्गत जिस स्निग्ध प्रेम की प्राण प्रतिष्ठा हिन्दू समाज में है उसी का निर्वाह जायसी ने नागमती द्वारा कराया है। नागमती **"रहै जो पिय के आयसु औ बरतै होई हीन। सोई चाँद अस निर्मल जनम न होई मलीन॥"** में ही जीवन की सार्थकता समझती हैं। इस शान्त और सुरम्य प्रेम धारा का मोड़ हमें उस समय स्पष्ट दिखाई पड़ता है जब राजा रत्न सेन चित्तौड़ छोड़कर सिंहल द्वीप पहुँच जाते हैं। प्रेम के दो पक्ष स्वीकार किये गये हैं संयोग और वियोग। इन्हीं

दोनों पक्षों में प्रेम का स्वरूप मूर्तिमान होता है। संयोग में प्रेम का स्वरूप शान्त सुस्थिर एवं संयत रहा करता है। वियोग में वही प्रेम निखरा हुआ प्रभा युक्त सम्मुख आता है। किसी भावुक ने प्रेम के दोनों पक्षों को लेकर बड़ी सुन्दर उक्ति कही है....."विरह प्रेम की जागृति गति है और सुषुप्ति मिलन।" अंग्रेजी साहित्य के कवि पी. वी. शैली ने भी इसी भाव को "our sweetest songs are those that tell of our saddest thought." में व्यक्त किया है। नागमती की प्रेम धारा का यह मोड़ इसी भावना से ओत प्रोत है। इसमें विरह जनित व्याकुलता का जो चित्रण है वह जड़ चेतन सभी को समन्वित किये हुये हैं। श्री राम की भाँति "हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥" आदि न कह कर, नागमती राजा रत्नसेन के प्रवास स्थान को जानने के कारण "परवत समुद्र अगम बिच, बीहड़ घन बन ढाँख। किमि कै भेटौं कन्त तुम्ह ना मोहि पाव न पाँख॥" कहती है। वह दामपत्य सुख का अनुभव करने वाली स्त्रियों की कल्पना कर उनके भाग्य को सराहती हैं।

"जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्व।
कन्त पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व॥"

श्री राम चरित मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम राम पत्नीहीन होने के कारण अपने को पक्षी दम्पति से भी हेय मानते हैं।

"नारि सहित सब खग मृग बृन्दा। मानहुँ मोरि करत हहिं निन्दा॥"

नागमती की प्रेम धारा के इस मोड में जिन मोतियों का जाल बिछा वह अनुपमेय है। ऋतु प्रभाव के अन्तर्गत विरहिणी की क्या अवस्था होती है इसका चित्रण जिस सुन्दरता के साथ हुआ है वह स्तुत्य है। वियोगावस्था में वही ऋतु जो संयोग के समय सुखदायक और रुचिकर होती है विरह के समय दुख दायक और अरुचिकर प्रतीत होती है। आन्तरिक मन की अवस्था के दृष्टिकोण से ही बाह्य उपादानों का मूल्याकंन हुआ करता है। पी. वी. शैली ने इसी भाव को निम्नलिखित पंक्तियों मे इतनी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है कि उसके उल्लेख का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता हूँ। अत :—

A widow bird sat mourning for her love,
upon a wintry bough,
The frozen wind crept on above,
The freezing stream below.
There was no leaf upon the finest bare,
No flower upon the ground,
And little motion in the air
except the mill-wheel's sound.

ठीक इसी से मिलती जुलती भावना का जो शब्द-चित्र नागमती की बिरह व्यथा के माध्यम से जायसी ने प्रस्तुत किया है वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी है।

"कुहुकि कुहुकि जस कोइलरोई। रकत-आंस घुघंची बन बोई॥
जंह जंह ठाढि होई बनबासी। तंह तंह होई घुंघची कै रासी॥
बूंद बूंद मंह जानउ जीऊँ। गुंजा गुंजि करै, पिऊ पीऊ॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूडि उठे होइ राते॥
राते बिम्ब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ॥"

जायसी के सर्वश्रेष्ठ अध्येता आचार्य शुक्ल जी ने निर्णयात्मक शब्दों में अपने भाव व्यक्त करते हुये लिखा है कि :....."जायसी ने यह कम कहा है कि विरह का ताप इतनी मात्रा का है, यह अधिक कहा है कि ताप हृदय में ऐसा जान पड़ता जैसे :....."

(क) "जानहुँ अगिनि के उठहि पहारा। औ सब लागहिं अङ्ग अङ्गारा॥"
(ख) "जरत बजागिनिकर पिउ छांहा। आई बुझाउ अङ्गारन्ह माहां॥
लागिऊ जरे, जरै जस भारु। फिर फिर भूंजेसि तजिऊ न बारु॥"

विरह ताप की मात्रा नापने के लिये कवियों ने ऊहात्मक पद्धति अपनाई है। जायसी ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया है, परन्तु जो गम्भीरता और विरह वेदना की तीव्र ध्वनि इनके द्वारा व्यञ्जित हुई है वह अनुपमेय है। उदाहरणार्थ :...

"जेहि पंखी कै नियर होई, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होहि निपात॥"

नागमती की प्रेम धारा के दूसरे मोड़ पर हम उस समय पहुँचते हैं जब उसे यह आभास लगता है कि पति पद्मावती के सौन्दर्य जाल में फँसे होने के कारण मेरी ओर से उदासीन है। वह मान सम्मान को तिलांजलि देकर

पति परायणा की भाँति पति के सुख में ही सुख मानती हुई अपने अधिकार और इच्छा की अभिव्यक्ति करती है।

"पद्मावति सौं कहहु विहंगम। कन्त लोभाई रही करि संगम॥
तोहि चैन सुख मिलै शरीरा। मो कहँ हिए दुंद दुख पूरा॥
हमहूँ विआही संग औहि पीऊ। आपुहि पाई जानु पर जीऊ॥
मोहि भोग सों काज न बारी। सौंह दिस्टि कै चाहन हारी॥"

पद्मावती के माध्यम से भी संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का निरूपण हुआ है। ऋतु के आधार पर जायसी ने संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं को मूर्तिमान किया है। पद्मावती की संयोगावस्था तथा नागमती की वियोगावस्था का ऋतु आधार पर जो सम्यक चित्रण हुआ है वह स्वानुभूति की वस्तु है। पद्मिनी की वियोगावस्था का चित्रण करते हुये कवि कहता है :...

"कवंल सूख पखुरी बेहरानी। गलिगलि कै मिलि छार हेरानी॥

जायसी ने वियोग पक्ष में बीभत्स रस का भी कहीं कहीं सामञ्जस्य करने की चेष्टा की है अथवा फारसी अध्येता होने के कारण वे अपने को उससे अलग नहीं कर सकें हैं। पर ऐसी स्थिति बहुत कम है। जायसी का संयोग-पक्ष पद्मावती तथा वियोग-पक्ष नागमती के माध्यम से सुन्दरता के साथ मुखरित हुआ है। संयोग पक्ष में जायसी की वाणी अन्योक्ति की ओर अधिक झुकी हुई दिखलाई पड़ती हैं। जायसी ने संयोग के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न स्थितियों जैसे मिलन, अभिसार, और परिहास आदि की भी योजना की है परन्तु यह पक्ष वियोग-पक्ष की अपेक्षा अधिक ध्वनित नहीं हो पाया है।

यह हम पहले ही कह आये हैं कि लौकिक कथा का आधार लेकर पद्मावत में ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यंजना हुई है अतः ईश्वरोन्मुख प्रेम की उक्तियों का समावेश प्रायः उन सभी स्थलों पर हुआ है जहाँ उसके लिये जरा भी स्थान मिला है। उदाहरणार्थ जब राजा रत्नसेन दिल्ली में कैद है उस समय पद्मावती विलाप कर रही है।

(क) "सो दिल्ली अस निबहुर देशू। केहि पूछहुँ को कहै संदेसू॥
जो कोई जाइ तहाँ कर होई। जो आवे किछु जान न सोई॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गयउ सो बहुरि न आवा॥

× × ×

( ख ) "कवंल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयऊ सुखाई ।
अबहु बेलि फिर पलुहै, जो पिय सीचैं आई ।।"

× × ×

( ग ) "पिऊ हिरदय महु भेंट न होई । को रे मिलाव, कहौं केहि रोई ।।"

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जायसी ने पद्मावत में वियोग-पक्ष और शृंगार-पक्ष के बीच ईश्वरोन्मुख प्रेम की जो अभिव्यञ्जना की है वह अन्य किसी साहित्यकार की कृति में दुर्लभ है ।

# उपसंहार

जायसी सूक्ति-सागर में अभी तक जिन विचारकों ने अपने अपने विचार जाल बिछा कर अनुपम मोतियों को निकाला है उनमें आचार्य शुक्ल जी ही अधिक सुसम्पन्न दृष्टिगत होते हैं। उनकी अवगाहन शक्ति अन्य आलोचकों की अपेक्षा अधिक प्रतिभा सम्पन्न रही है यही कारण है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है उसी पर अथवा उसी के आस पास ही विद्वजन चक्कर काट रहे हैं और जो जिस पहलू की चमक दमक से प्रभावित होता है उसी की चर्चा कर बैठता है। इधर डाक्टर कमल कुल श्रेष्ठ जी ने प्रशंसनीय प्रयास किया है। पद्मावत का भाष्य भी कई साहित्य सेवियों द्वारा लिखा गया है परन्तु जो बात डाक्टर बासुदेव शरण अग्रवाल तथा आचार्य मुन्शी राम जी के भाष्य में है वह अन्य में नहीं आ पाई है। पद्मावत को छोड़कर जायसी की अन्य कृतियों पर अभी पूर्णतया विचार विमर्श नहीं किया गया है। इसके दो कारण हैं प्रथम तो पद्मावत का विश्वविद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों के बीच स्थान पाना तथा दूसरा पद्मावत का अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक आकर्षक एवं सरस होना है। आचार्य शुक्ल जी की जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका को पढ़ने तथा गुरूवृन्द के सत संग से जो कुछ, प्राप्त किया उसे टूटे फूटे शब्दों में रखने का प्रयास प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। जहाँ भावों को पचाकर रखने में कुछ कठिनाई पड़ी है वहाँ ज्यों के त्यों उद्धरणों को देने में संकोच नहीं किया गया है।

इधर कबीर और जायसी की तुलना की चर्चा अधिक हो चली है। विश्वविद्यालयों के प्रश्न पत्रों में इस पर अनेक बार प्रश्न भी पूछे गये हैं अतः इस पर विचार करने की इच्छा थी परन्तु स्थूल रूप से सूफी और सन्तकाल के अन्तर्गत इन पर विचार किया जा चुका था अतः पुनुरुक्ति दोष और उखाड़ पछाड़ की नीति से सहमत न होने के कारण चुप ही रहना उचित समझा। जिस प्रकार आचार्य सदगुरुशरण अवस्थी ने 'तुलसी के चार दल' लिख कर तुलसी की उन कृतियों की प्रतिभा को, जिनका सामान्य जनता के बीच आदर नहीं था, प्रकाशित किया है, उसी प्रकार अन्य कोई साधक एवं विशिष्ट आलोचक अखरावट, आखिरी कलाम तथा कहारानामा को लेकर प्रयास करे तो एक बहुत बड़े अंश की पूर्ति होगी।

# हिन्दी के ये अनुपम उपन्यास

## उपन्यास [अनूदित]—

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५ | पवित्र पापी | (पंजाबी) नानक सिंह | ०.९७ |
| ५ | जीवन संग्राम | " " " " | ५.०० |
| ५ | स्वर्णिम अतीत | (अंग्रेजी) अनु० मोहन लहरी | ३.५० |
| ५ | माँ | " पर्ल एस० बक | ३.०० |
| ५ | डब्रोवस्की | " ए० एस० पुश्किन | २.०० |
| ५ | रूडिन | " इवान सेरेजयेविच | ३.५० |
| ८ | आनन्द मठ | (बँगला) बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय | २.५० |
| ८ | कपाल कुण्डला | " " " | २.२५ |
| ८ | दुर्गेशनन्दिनी | " " " | २.५० |
| ८ | सीताराम | " " " | २.५० |
| ८ | रजनी | " " " | १.५० |
| ८ | राजसिंह | " " " | ३.०० |
| ८ | देवी चौधरानी | " " " | २.०० |
| ८ | राधारानी | " " " | १.२५ |
| ८ | कृष्णकान्त का वसीयतनामा | " " " | २.५० |
| ८ | मृणालिनी | " " " | २.५० |
| ८ | विषवृक्ष | " " " | २.५० |
| ८ | इन्दिरा | " " " | १.२५ |
| ८ | चन्द्रशेखर | " " " | २.२५ |
| ८ | कमलाकान्त का पोथा | " " " | २.०० |
| ८ | लोक-रहस्य | " " " | २.०० |

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय पो. बा. नं. ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ८ | अधखिली कली | " | स्वर्णमयी देवी | ३.५० |
| ८ | देवदास | " | शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय | २.०० |
| ८ | परिणीता | " | " " | १.२५ |
| ८ | हरिलक्ष्मी | " | " " | १.०० |
| ८ | अनुराधा | " | " " | १.०० |
| ८ | काशीनाथ | " | " " | १.०० |
| ८ | आँख की किरकिरी | " | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ३.५० |
| ८ | रत्नमन्दिर | " | अनु० राजाराम गुप्त | २.०० |

## उपन्यास [मौलिक]—

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५ | कश्मीर | राजकुमार | ५.०० |
| ५ | दिगम्बर | शांतिप्रिय द्विवेदी | २.०० |
| ५ | मुक्तिदान | सिद्धविनायक द्विवेदी | १.७५ |
| ५ | श्वेत पद्मा | " " | १.७५ |
| ५ | बालू के टीले | ब्रजेन्द्र खन्ना | ५.०० |
| ५ | निशा डूबती है | जयप्रकाश शर्मा | ३.५० |
| ५ | राजा रिपुमर्दन | हर्षनाथ | ३.०० |
| ५ | सीधे-सादे रास्ते | देवीप्रसाद धवन 'विकल' | ३.५० |
| ८ | दो दिनों की दुनियाँ | आचार्य 'मग' | ३.०० |
| ८ | प्यार की जीत | श्रीराम बेरी | १.७५ |
| ५ | मालिन | साधुशरण | ५.०० |
| ८ | अन्याय का प्रतिकार | ठा० देवबली सिंह | ४.०० |
| ८ | टूटती हुई जंजीरें | डॉ० सत्यनारायण शर्मा | ३.२५ |
| ८ | आनन्द भवन | निहालचन्द्र वर्मा | ३.०० |
| ८ | जादू का महल | " " | ३.०० |
| ८ | मोती महल | " " | ६.०० |
| ८ | सोने का महल | " " | ७.०० |
| ५ | उल्का | रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' | ५.०० |
| ५ | वनमाला | सरस्वती सरन "कैफ" | ३.५० |
| ५ | सूर्यग्रास | सुशील जाना | ३.०० |

# हमारा आलोचना तथा निबन्ध साहित्य

| | | |
|---|---|---|
| कला क्या है ? | तालस्ताय | ०.९७ |
| साकल्य | शांतिप्रिय द्विवेदी | ४.०० |
| स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य | डा० रामविलास शर्मा | ४.०० |
| साहित्यधारा | प्रकाशचन्द्र गुप्त | ४.०० |
| अतीत से वर्तमान | राहुल सांकृत्यायन | ३.५० |
| स्वदेश और साहित्य | अनु० : डॉ० महादेव साहा | ०.९७ |
| सदा सुहागिन रूठ गई | सुधाकर पांडेय | ३.०० |
| भारतीय संस्कृति (वैदिक धारा) | डॉ० मंगलदेव, शास्त्री | ७.०० |
| हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास | डा० जार्ज ए० ग्रियर्सन किशोरीलाल गुप्त द्वारा सम्पादित | ९.०० |
| मधुमालती ( मंझन कृत ) | डॉ० शिवगोपाल मिश्र | ८.०० |
| रवीन्द्र कविता कानन | 'निराला' | ०.९७ |
| कबीर और जायसी का मूल्यांकन | पुरुषोत्तम चन्द्र वाजपेयी | २.५० |
| प्रसाद के नाटक | परमेश्वरी लाल गुप्त | ४.५० |
| रस साहित्य और समीक्षाएँ | 'हरिऔध' | ४.०० |
| कहानी का रचना-विधान | डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा | ५.०० |
| प्रसाद की कविताएँ | सुधाकर पांडेय | ८.०० |
| हास्य की रूप-रेखा | डॉ० एस० पी० खत्री | ९.०० |
| भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य | डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव | १०.०० |
| हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद | त्रिभुवन नारायण सिंह | ६.०० |
| आधुनिक साहित्य और कला | डॉ० महेन्द्र भटनागर | २.५० |
| भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि | किशोरीलाल गुप्त | १०.०० |
| सूर के सौ कूट | चुन्नीलाल 'शेष' | ५.०० |
| हिन्दी महाकाव्य : स्वरूप विकास | डॉ० शंभूनाथ सिंह | १२.०० |
| श्रीराधा का क्रम-विकास | डॉ० शशिभूषण दास गुप्त | ८.०० |
| डॉ० इकबाल और उनकी शायरी | प्रो० हीरालाल चोपड़ा | ३.५० |
| संक्षिप्त " " | " " | ०.९७ |
| फ़ारसी साहित्य की रूपरेखा | डॉ० हिकमत | ४.०० |
| हिन्दी लिटरेचर ( अंग्रेजी ) | डॉ० रामअवध द्विवेदी | ५.०० |

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो. बा. नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी।

| | | |
|---|---|---|
| सं० हिन्दी साहित्य और साहित्यकार | सुधाकर पांडेय | ०.९७ |
| हिन्दी साहित्य १९५४ | सुधाकर पांडेय | २.७५ |
| हिन्दी साहित्य की रूपरेखा | कृष्णदेवप्रसाद गौड़ | १.५० |
| प्रसाद काव्य-कोष | सुधाकर पांडेय | ६.०० |
| राजस्थानी भाषा की रूपरेखा | पुरुषोत्तम लाल मेनारिया | १.५० |
| भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन | डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय | १२.०० |
| लोकसाहित्य प्रवेश | डॉ० सत्येन्द्र | ६.०० |
| योरोपीय साहित्य | विनोदशंकर व्यास | २.०० |
| आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा | त्रिभुवन नारायण सिंह | ४.०० |
| उर्दू काव्य में हास्यरस | राजेन्द्र सिंह गौड़ | ५.०० |
| मार्क्सवाद और साहित्य | महेन्द्रचन्द्र राय | ३.५० |
| रत्नाकर और उनका काव्य | उषा जायसवाल | ५.०० |
| छायावाद के गौरव-चिह्न | प्रो० क्षेम | ९.०० |
| हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों का उद्भव और विकास | डॉ० शकुन्तला दूबे | १२.०० |

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो. बा. नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी ।